स्वस्थ चेतना का वाहक

सहयोग राशि
40/-₹

दिसम्बर 2026

क्रान्ति

मासिक

मानवाधिकार Human Rights

- प्राचीन परंपराओं से आधुनिक व्यवस्था तक
- मानवाधिकारों के उल्लंघन की त्रासदी
- इस्लाम में मानवाधिकार संरक्षण
- असंतोष की वैश्विक लहर



INTERNATIONAL • HUMAN RIGHTS • ORGANIZATION

IHRO

समता • न्याय • शांति • बेहतर कल की ओर

(An ISO 22000:2005 Certified Company)

OCEANS SECRET

INDIA'S LEADING CANNED FOOD BRAND

- TUNA
- SARDINES
- MACKEREL



www.oceanssecret.in | info@seahath.com | Follow Us: oceanssecret | SHOP ONLINE @ amazon

SEAHATH CANNING CO. Plot - 8, Margao Industrial Estate, Curtorim, GOA, INDIA - 403 709 **CUSTOMER CARE : 0832-2860412**

प्रधान संपादक
डॉ. फ़रहत हुसैन

प्रबंधक
नईम ख़ान
+91 9891160829

सहयोग राशि
एक प्रति 40/- रु॰ एक वर्ष 450/- रु॰
पांच वर्ष 2000/- रु॰ आजीवन रु॰ 6000/
सऊदी अरब और खाड़ी के देशों के लिए 150/- रियाल
यूरोप व अमेरिका के लिए 50/- US डॉलर

अदाएगी के बाद स्क्रीनशॉट हेल्पलाइन न॰ **9818799223** पर अवश्य भेजें।

Name: KANTI
Pay Directly to: kanti8920589292@indianbk

Account Detail
NAME : KANTI
A/C NO : 0990839195
IFS CODE : IDIB000J029
TYPE : CURRENT
BANK : INDIAN BANK
BRANCH : JAMIA MILLIA ISLAMIA
NEW DELHI - 110025

चेक / ड्राफ़्ट 'कान्ति' के नाम से बनवाएं

ख़रीदार बनने, एजेंसी लेने, प्रचार-प्रसार एवं प्रबंधकीय मामलों के लिए सम्पर्क करें :

कार्यालय :
कान्ति मासिक, डी-314, दावत नगर,
अबुल फ़ज़्ल इन्कलेव, जामिया नगर,
ओखला, नई दिल्ली-110025

प्रकाशक मुहम्मद अहमद द्वारा दावत ट्रस्ट (रजि॰), डी-314 दावत नगर, अबुल फ़ज़्ल इन्कलेव, जामिया नगर, नई दिल्ली-110025 से प्रकाशित एवं
Printer : Akhilesh Singh
Press : AARYA PRINTERS
201, Ground Floor, DSIDC Complex
Okhla Industrial Area phase-1,
New Delhi-110020
Editor : Mohammad Ahmad

संस्था की लिखित अनुमति के बिना सम्पूर्ण या आंशिक पुनर्प्रकाशन पूर्णतः प्रतिबंधित है।

विचार सौरभ **डॉ. कौसर यज़दानी नदवी**

इंसान की तलाश

एक थे दार्शनिक,
दिन में लालटेन लिए हुए,
रास्ते से गुज़र रहे थे,
लगा, जैसे कुछ खोज रहे हों।
लोगों ने पूछा, क्या बात है?
बोले, कुछ खो गया है, उसकी तलाश में निकला हूँ।
दिन के उजाले में, वह भी लालटेन लेकर?
हाँ, दिन के उजाले में ही उसे खोज पाऊँगा,
रात के अँधेरे में तो पहचान करना बड़ा कठिन है,
उसमें तो सब एक जैसे लगते हैं।
आख़िर क्या है वह? कुछ तो मालूम हो?
उत्तर मिला, मुझे जिसकी तलाश है,
उसे लोग 'इंसान' कहते हैं।
यह सुनकर कुछ चकित रह गए, कुछ ग़ुस्से में आ गए,
बोले, क्या हम इंसान नहीं हैं?
क्या हम कुछ और दिखाई पड़ते हैं?
दार्शनिक बोला, मैं सच कह रहा हूँ,
आप मान लीजिए,
नहीं मानते तो सुनिए,
आप जैसे लोग,
या तो व्यापारी हैं, या कारोबारी,
या डॉक्टर हैं, या इंजीनियर
या शिक्षक हैं, या गुरु,
या नेता हैं, या 'समाज के बड़े',
या स्त्री हैं या पुरुष,
ईमानदारी से बताओ,
क्या इनमें से कोई ऐसी भी है जो,
हर एक का हक़ अदा करे
एक-दूसरे का अधिकार पहचाने,
सबको समान समझे,
कोई भेदभाव न करे,
सबको प्यार करे,
दुख-दर्द में काम आए,
एक-दूसरे की सेवा में लगा रहे,
और सबसे बड़ी बात यह है कि
वह अपने स्वामी, रचयिता, पालनहार,
कर्ता-धर्ता को पहचाने
और उसी को समर्पित हो।

(प्रथम प्रकाशन, अप्रैल 1999)

वर्ष 36 अंक 06 दिसम्बर 2026





स्वस्थ चेतना का वाहक

कान्ति
मासिक

इस अंक में

➢ इंसान की तलाश (विचार सौरभ)	– डॉ. कौसर यज़दानी नदवी	3
➢ मानवाधिकार दिवस (संपादकीय)	–डॉ. फ़रहत हुसैन	5
➢ मार्गदर्शन	–संपादन प्रभाग	6
➢ समझदारी से जीने का सलीक़ा	–सुफ़ियान अहमद	7
➢ 'न्यू नॉर्मल' का अर्थशास्त्र	–सुफ़ियान अहमद	9
➢ पर्यावरण समस्या और इस्लामी शिक्षाएं	–संपादन प्रभाग	11
➢ मानवाधिकार : प्रकृति की आवाज़ और ईश्वरीय मार्गदर्शन	–एफ़. ए. मुजीब	13
➢ सभ्यताओं का साझा संघर्ष और मानवीय गरिमा का सवाल	–डॉ. मुहम्मद इक़बाल सिद्दीक़ी	17
➢ समकालीन विश्व में मानवाधिकारों के उल्लंघन की त्रासदी	–सुफ़ियान अहमद	21
➢ इस्लाम : मानवाधिकारों का ध्वजावाहक	–एम. एस. शम्सी	25
➢ मैं आस्थावान हूँ (कविता)	–डॉ. मुहम्मद अहमद	29
➢ दूसरा बनवास (कविता)	–कैफ़ी आज़मी	29
➢ माँ की चिन्ता (लघुकथा)	–प्रतिभा राज	29
➢ सत्ता और विपक्ष से आगे का सवाल	–डॉ. प्रदीप कुमार	31
➢ एंटी सुसाइड फ़ैन...	–डॉ. अहमद उरूज मुदस्सिर	33
➢ असंतोष की वैश्विक लहर	–डॉ. फ़रहत हुसैन	37
➢ विश्व घटनाचक्र	–संपादन प्रभाग	39
➢ ज़कात : आर्थिक सुधार का व्यावहारिक यंत्र	–डॉ. फ़रहत हुसैन	41
➢ क़ानून के शासन का संदेश	–मुशर्रफ़ अली	43
➢ हमारा समाज, हमारी ज़िम्मेदारी	–तबस्सुम शेख़	44
➢ मुझे आज़ादी दो या क़ब्र के लिए ज़मीन	–संपादन प्रभाग	46
➢ न्याय का स्वरूप	–आयशा सुल्ताना	47
➢ भाईचारे की स्थापना	–मुशर्रफ़ अली	49

संपादकीय



डॉ. फ़रहत हुसैन

मानवाधिकार दिवस

10 दिसंबर को मनाया जाने वाला मानवाधिकार दिवस (Human Rights Day) दुनिया भर में लोगों को उनके अधिकारों के प्रति जागरूक करने और मानवता की सुरक्षा के लिए एक महत्वपूर्ण दिन है। संयुक्त राष्ट्र महासभा (UN General Assembly) ने 10 दिसंबर 1948 को पेरिस में मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा (Universal Declaration of Human Rights-UDHR) को अपनाया था। यह इतिहास का एक ऐसा दस्तावेज़ है,जिसने यह तय किया कि मनुष्य के बुनियादी अधिकारों को विश्व स्तर पर सुरक्षा मिलनी चाहिए। आधिकारिक तौर पर इस दिवस को मनाने की शुरुआत 1950 में हुई थी।

इनसान के मौलिक अधिकारों का संरक्षण मानव समाज की आधारशिला है। स्वतंत्रता, समता, समानता, जान-माल इज़्ज़त-आबरू की सुरक्षा; अन्याय, अत्याचार, घृणा तथा तिरस्कार से बचाव; रंग नस्ल जाति धर्म क्षेत्र तथा भाषा के आधार पर भेदभावरहित वातावरण, समाज के लिए बेहद ज़रूरी हैं। ऐसा नैतिक तथा क़ानूनी ढांचा मौजूद होना ही चाहिए जो लोगों को, सरकारों, समूहों तथा व्यक्तियों की ज़्यादतियों से सुरक्षा प्रदान करे। किसी व्यक्ति, समुदाय या धर्म के प्रति घृणा पैदा करने के कुचक्र से बचने की उचित व्यवस्था हो।

जब हम मानवाधिकारों के इतिहास पर नज़र डालते हैं तो पाते हैं कि प्राचीन सभ्यताओं में यूनान तथा रोम के साहित्य में सीमित रूप से नागरिक अधिकारों का उल्लेख मिलता है। बड़े धर्मों में भी लोगों के अधिकारों के संबंध में शिक्षाएं मिलती हैं। छठी शताब्दी से दसवीं शताब्दी के बीच इस्लाम तथा मुस्लिम जगत का, इनसान की जटिल समस्याओं के समाधान के साथ ही मानवाधिकारों के संबंध में सिद्धांत तथा व्यवहार पर बहुत महत्वपूर्ण योगदान पाया जाता है। परंतु आश्चर्य की बात है कि पश्चिमी लेखकों ने अपनी किताबों में उस योगदान को उचित स्थान नहीं दिया। पश्चिमी जगत में नागरिक अधिकारों के संबंध में तेरहवीं शताब्दी (सन् 1215 ई०) में इंग्लैंड में लागू किए गए मैग्ना कार्टा (Magna Carta) को एक शुरुआत माना जाता है, हालांकि उस समय इसका उद्देश्य आम नागरिकों के बजाय इंग्लैंड के उच्च वर्ग को अधिकार देना था। अट्ठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दी में मानवाधिकारों के संबंध में जागरूकता उत्पन्न हुई, जिसके फलस्वरूप, बीसवीं शताब्दी में कई महत्वपूर्ण देशों ने इनसान के मूल अधिकारों का अपने संविधानों में उल्लेख किया।

दुनिया भर में मानवाधिकारों की रक्षा, प्रचार और उल्लंघन की निगरानी करने वाली कई प्रमुख संस्थाएं कार्यरत हैं। संयुक्त राष्ट्र संघ (UNO) विश्व शांति एवं मानवाधिकार संरक्षण के लिए सबसे महत्वपूर्ण संस्था है। संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार परिषद (UNHRC), अंतरराष्ट्रीय मानवाधिकार परिषद (I H R O), एमनेस्टी इंटरनेशनल, ह्यूमन राइट्स वॉच आदि संस्थाएं अंतरराष्ट्रीय स्तर पर कार्यरत हैं। भारत में राष्ट्रीय स्तर पर मानवाधिकार आयोग (NHRC) कार्य करता है। इन सबके बावजूद विश्व के कई राष्ट्रों के बीच युद्ध जारी हैं। हाल के वर्षों में मानवाधिकार हनन की गंभीर घटनाएं सामने आई हैं।

ऐसे में मानवाधिकार दिवस हमें याद दिलाता है कि मानवाधिकारों की रक्षा के लिए केवल संस्थाएं बनाना, कुछ घोषणाएं कर देना अथवा कोई प्रस्ताव पास कर देना पर्याप्त नहीं है, इसके लिए ठोस प्रयास करने होंगे। मानवाधिकारों के सम्मान तथा समता और समानता के लिए डेढ़ हज़ार वर्ष पूर्व इस्लाम द्वारा प्रस्तुत किए गए तथा व्यावहारिक रूप से धरती पर लागू किए गए सिद्धांतों के भी अध्ययन की आवश्यकता है, क्योंकि इन सिद्धांतों के द्वारा कमज़ोरों, महिलाओं, अनाथों और ग़ुलामों को अधिकार दिए गए। समाज में व्याप्त भेदभाव को समाप्त किया गया। ■■

–संपादन प्रभाग

क़ुरआन



ख़ुश्की और तरी में फ़साद फैल गया है

क़ुरआन की सूरह अर-रूम (30), आयत-41 में उल्लिखित है :

"ख़ुश्की (ज़मीन) और तरी (समंदर) में फ़साद (बिगाड़) फैल गया है ख़ुद लोगों के अपने हाथों की कमाई के कारण, ताकि अल्लाह उन्हें उनके कुछ आमाल (कर्मों) का मज़ा चखाए, शायद कि वे बाज़ आ जाएं।" (क़ुरआन, 30:41)

जिस समय क़ुरआन की यह आयतें अवतरित हुईं, उस समय रोम तथा ईरान के बीच लड़ाई चल रही थी जिसकी आग ने पूरे मध्य पूर्व को अपनी लपेट में ले लिया था। आज भी जब हम विश्व परिदृश्य पर नज़र डालते हैं तो हमें चारों ओर बिगाड़ दिखाई देता है, जो इंसानों के अपने हाथों द्वारा ही लाया जा रहा है। विश्व के कई देश युद्धरत हैं जिसमें घातक हथियार ड्रोन और मिसाइलें इस्तेमाल की जा रही हैं। राष्ट्रों के अंदर भी अशांति एवं बेचैनी पाई जाती है। दंगे फ़साद हो रहे हैं।

पर्यावरण को बड़े पैमाने पर प्रदूषित किया जा रहा है। अर्थव्यवस्था के क्षेत्र में बिगाड़ तथा करप्शन के कारण बड़ी संख्या में इंसान बुनियादी आवश्यकताओं की कमी से जूझ रहे हैं। संसाधनों की कमी समस्या नहीं, समस्या उनके न्यायोचित वितरण की है। सामाजिक तथा राजनीतिक क्षेत्र भी इस बिगाड़ से अछूता नहीं है। अन्याय तथा मानवाधिकार हनन की घटनाएं आम बात है।

"लोगों के अपने हाथों की कमाई" से तात्पर्य वह अवज्ञा, भ्रष्टाचार, ज़ुल्म और अन्याय है जो आख़िरत को नज़रअंदाज़ करने से अनिवार्य रूप से इंसानी चरित्र व आचरण में पैदा होता है।

"शायद कि वे बाज़ आ जाएं" से तात्पर्य है कि अल्लाह आख़िरत की सज़ा से पहले इस दुनिया में इंसानों को उनके तमाम कामों का नहीं बल्कि कुछ कामों का बुरा नतीजा इसलिए दिखाता है कि वे वास्तविकता को समझें और अपनी ग़लती को महसूस करके उस सही अक़ीदे की ओर पलटें जो पैग़म्बर हमेशा से इंसान के सामने पेश करते चले आ रहे हैं। युद्ध के मुहाने पर खड़ी दुनिया के लिए यह एक ईश्वरीय चेतावनी (Divine Warning) भी है। ■■

हदीस

युद्ध और प्राकृतिक आपदाएं

जब इंसान अपनी करतूतों से ज़मीन पर ज़ुल्म और बिगाड़ फैलाता है, तो उसका ख़मियाज़ा पूरी इंसानियत को भुगतना पड़ता है। इस संबंध में पैग़म्बर हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) की एक अहम हदीस का अनुवाद इस प्रकार है :

"जब किसी क़ौम में वादाख़िलाफ़ी आम हो जाती है, तो अल्लाह उनके बीच क़त्लो-ग़ारत (हत्याएं, हिंसा और युद्ध) को मुसल्लत कर देता है। और जब समाज में ज़ुल्म और नाइंसाफ़ी फैलती है, तो वे अकाल और तबाही की चपेट में आ जाते हैं।" (हदीस : मुसनद अहमद / अल-हाकिम)

यह हदीस क़ुरआन की सूरह अर-रूम (30), आयत-41 के उस हिस्से की व्याख्या भी करती है जहाँ कहा गया है–"ताकि अल्लाह उन्हें उनके कुछ आमाल (कर्मों) का मज़ा चखाए।" आज के दौर में इंसानी लालच के कारण युद्ध तथा अन्य प्रकार के बिगाड़ के जो बादल विश्व पर मंडरा रहे हैं, वे इसी का नतीजा हैं। ■■

समझदारी से जीने का सलीक़ा

❖सुफ़ियान अहमद

हम यह भली-भांति जानते हैं कि जीवन हमेशा हमारी शर्तों पर नहीं चलता। कभी मेहनत के बावजूद मंज़िल नहीं मिलती, कभी रिश्ते उम्मीदों पर खरे नहीं उतरते और कभी ऐसी परिस्थितियों से सामना होता है, जिनके बारे में हमने कल्पना तक नहीं की होती। ऐसे में सवाल यह है कि जब चीज़ें हमारी इच्छा के मुताबिक़ न हों, तब हम अपने विचारों, व्यवहार और मन के संतुलन को कैसे बनाए रखें?

हमें लगता है कि जिस दिन परिस्थितियाँ हमारे अनुकूल हो जाएँगी, उस दिन हम सुकून से जी सकेंगे। इस प्रकार हम अपने जीवन की ख़ुशी को उन परिस्थितियों के हवाले कर देते हैं, जिन पर हमारा पूरा नियंत्रण नहीं है। नतीजा यह होता है कि वर्तमान की तमाम अच्छी चीज़ों के बावजूद हम उस सुख की प्रतीक्षा करते रहते हैं, जो किसी अनिश्चित भविष्य में मिलने वाला है।

क्या जीवन की सार्थकता मुश्किलों के समाप्त हो जाने में ही है? क्या शांति का अर्थ यह है कि हमारे आसपास कुछ भी ऐसा न घटे, जो हमें विचलित कर सके? क्या सुकून पाने के लिए ज़रूरी है कि दुनिया हमारी अपेक्षाओं के अनुसार चलने लगे? यदि ऐसा है, तो शायद ही कोई व्यक्ति वास्तव में शांतिपूर्ण जीवन जी सकेगा। क्योंकि जीवन का स्वभाव ही परिवर्तनशील है। कभी परिस्थितियाँ हमारे पक्ष में होती हैं, कभी विरोध में। कभी मेहनत का अच्छा परिणाम मिलता है, तो कभी पूरी ईमानदारी से कोशिश करने के बावजूद अपेक्षित सफलता नहीं मिलती।

लेकिन क्या जीवन की सार्थकता मुश्किलों के समाप्त हो जाने में ही है? क्या शांति का अर्थ यह है कि हमारे आसपास कुछ भी ऐसा न घटे, जो हमें विचलित कर सके? क्या सुकून पाने के लिए ज़रूरी है कि दुनिया हमारी अपेक्षाओं के अनुसार चलने लगे? यदि ऐसा है, तो शायद ही कोई व्यक्ति वास्तव में शांतिपूर्ण जीवन जी सकेगा। क्योंकि जीवन का स्वभाव ही परिवर्तनशील है। कभी परिस्थितियाँ हमारे पक्ष में होती हैं, कभी विरोध में। कभी मेहनत का अच्छा परिणाम मिलता है, तो कभी पूरी ईमानदारी से कोशिश करने के बावजूद अपेक्षित सफलता नहीं मिलती। कभी अपने लोग साथ देते हैं और कभी उन्हीं से निराशा मिलती है, जिनसे सबसे अधिक उम्मीद होती है।

कोशिश, परिणाम और संतोष

जीवन में हमारे इरादों और कोशिशों का महत्त्व है, लेकिन हर परिणाम हमारी इच्छा के अनुसार नहीं मिलता। हम अपने फ़ैसलों और प्रयासों को बेहतर बना सकते हैं, मगर हर व्यक्ति और परिस्थिति को अपनी इच्छानुसार नहीं ढाल सकते। इसलिए जो हमारे वश में है, उसके लिए ईमानदारी से प्रयास करना चाहिए और जो नियंत्रण से बाहर है, उसके पीछे अपनी मानसिक शांति नहीं गँवानी चाहिए।

इसका अर्थ परिणामों की परवाह न करना नहीं है। अपनी ग़लतियों का मूल्यांकन करना और बेहतर रणनीति अपनाना ज़रूरी है। किसी प्रयास का असफल होना व्यक्ति के असफल होने का प्रमाण नहीं। वास्तविक संतोष उपलब्धियों के साथ-साथ उन्हें हासिल करने के लिए अपनाए गए रास्ते से भी मिलता है। सफलता की ख़ातिर ईमानदारी और दूसरों के अधिकारों से समझौता करने पर बाहरी उपलब्धि भी बेचैनी पैदा कर सकती है।

कठिनाई में विवेक की परीक्षा

योजना का असफल होना, किसी क़रीबी का विश्वास तोड़ देना या भविष्य का अनिश्चित दिखाई देना हमें भीतर तक प्रभावित कर सकता है। दुख, क्रोध और निराशा महसूस करना स्वाभाविक है। समझदारी का अर्थ भावनाओं को दबाना नहीं, बल्कि उनके बीच विवेक बनाए रखना है।

कभी क्रोध में दी गई प्रतिक्रिया पुराने संबंध को चोट

पहुँचा देती है। बदले की भावना हमें उसी घटना से बाँधे रखती है, जिससे हम मुक्त होना चाहते हैं। अपनी बात सही साबित करने की ज़िद भी दूसरों की उचित बात सुनने से रोक सकती है।

ऐसे समय में ठहरकर सोचना कमज़ोरी नहीं, समझदारी है। हमें विचार करना चाहिए कि क्या हम पूरी बात जानते हैं, हमारी प्रतिक्रिया न्यायसंगत होगी या नहीं और हमारे शब्द समस्या को सुलझाएँगे या बढ़ाएँगे। इससे हम आवेग में ग़लत निर्णय लेने से बच सकते हैं।

अपेक्षित परिणाम न मिलना पराजय नहीं

जीवन में कुछ परिस्थितियाँ ऐसी होती हैं, जिन्हें बदल पाना हमारे लिए संभव नहीं होता। समय बीत जाता है, कुछ अवसर लौटकर नहीं आते और कुछ संबंध बदल जाते हैं। पूरी ईमानदारी से प्रयास करने के बावजूद परिणाम इच्छा के विपरीत मिल सकते हैं। हर परिस्थिति को जीत और हार की कसौटी पर परखने से जीवन का बड़ा हिस्सा पराजय जैसा दिखाई देने लगेगा।

जीवन की ख़ूबसूरती इस बात में है कि कठिनाइयों के बावजूद हम अपने भीतर की अच्छाई बचाए रखें। हर चीज़ को जीतना या हर बात का जवाब देना ज़रूरी नहीं। कहीं प्रयास करना होता है, कहीं धैर्य रखना और कहीं परिणाम स्वीकार करके आगे बढ़ना।

अपनी इच्छा के विरुद्ध कुछ स्वीकार करना हमेशा हार नहीं होता। कभी किसी संबंध से दूरी बनाना अपने सम्मान की रक्षा के लिए ज़रूरी होता है। कभी अपने मूल्यों से समझौता करने के बजाय किसी इच्छा को छोड़ देना समझदारी है। कई बार अपनी ग़लती स्वीकार करके पीछे हटना भी साहस का काम होता है। लेकिन परिस्थितियों को स्वीकार करने और अन्याय के सामने समर्पण करने में अंतर है। किसी के अधिकार छीने जा रहे हों या किसी कमज़ोर पर अत्याचार हो रहा हो, तो शांति के नाम पर चुप रहना उचित नहीं। जहाँ सुधार संभव हो, वहाँ प्रयास करना और अधिकारों की रक्षा के लिए आवाज़ उठाना ज़रूरी है। वास्तविकता स्वीकार करने का अर्थ अन्याय को सही मान लेना नहीं है।

क्षमा, विनम्रता और आत्म सुधार

हम दूसरों की ग़लतियाँ जल्दी पहचान लेते हैं, लेकिन अपनी ग़लतियों के लिए अक्सर परिस्थितियों को ज़िम्मेदार ठहराते हैं। अपने लिए बहाने और दूसरों के लिए कठोर निर्णय रखना न्यायपूर्ण दृष्टि नहीं है।

आत्मसुधार का पहला क़दम अपनी ग़लती स्वीकार करना है। यदि हमारे शब्दों से किसी को चोट पहुँची है, तो क्षमा माँगना उचित है। किसी का अधिकार छीना है, तो जहाँ संभव हो, उसकी भरपाई भी करनी चाहिए। बार-बार एक ही ग़लती दोहराने के बजाय व्यवहार बदलने की कोशिश करनी चाहिए।

क्षमा का अर्थ यह नहीं कि हम हर व्यक्ति पर पहले जैसा विश्वास करने लगें। विश्वास व्यवहार से बनता है और उसे दोबारा बनाने में समय लगता है। हम बदले की भावना छोड़कर भी अपनी सीमाएँ निर्धारित कर सकते हैं। किसी के प्रति भलाई का भाव रखना और उसके अनुचित व्यवहार से स्वयं को सुरक्षित रखना विरोधी बातें नहीं हैं।

विनम्रता का अर्थ यह स्वीकार करना है कि हमारा ज्ञान सीमित है और हमसे भी ग़लतियाँ हो सकती हैं। अपनी धारणा पर पुनर्विचार करना या आवश्यकता पड़ने पर राय बदल लेना कमज़ोरी नहीं, बल्कि परिपक्वता का प्रमाण है।

आशा और भरोसे के साथ आगे बढ़ना

रोज़गार, परिवार, आर्थिक स्थिति और संबंधों को लेकर भविष्य की अनिश्चितता बनी रहती है। चिंताओं को पूरी तरह समाप्त करना संभव नहीं, लेकिन उन्हें वर्तमान पर हावी होने से रोका जा सकता है। भविष्य की तैयारी ज़रूरी है, मगर उसके डर में वर्तमान को नष्ट कर देना समझदारी नहीं।

समझदारी से जीने का सलीक़ा यही है कि हम कोशिशों में ईमानदार, फ़ैसलों में न्यायपूर्ण, सफलताओं में विनम्र और असफलताओं में धैर्यवान रहें। दुख को महसूस करें, लेकिन उसे विवेक पर हावी न होने दें। ग़लती हो, तो उसे स्वीकार करें; परिस्थिति बदलना संभव हो, तो प्रयास करें और जब बदलाव हमारे वश में न हो, तो सही रास्ता तलाशें।

जीवन की ख़ूबसूरती इस बात में है कि कठिनाइयों के बावजूद हम अपने भीतर की अच्छाई बचाए रखें। हर चीज़ को जीतना या हर बात का जवाब देना ज़रूरी नहीं। कहीं प्रयास करना होता है, कहीं धैर्य रखना और कहीं परिणाम स्वीकार करके आगे बढ़ना। ■■

कटाक्ष

'न्यू नॉर्मल' का अर्थशास्त्र

❖सुफ़ियान अहमद

'न्यू नॉर्मल' का सीधा-सा मतलब है कि जो चीज़ कल तक ग़लत, अजीब या परेशान करने वाली थी, आज उसे ज़िंदगी का हिस्सा मान लिया जाए। महँगाई बढ़े तो आदत डाल लीजिए, आमदनी न बढ़े तो ख़र्च घटा लीजिए, नौकरी न मिले तो पकौड़े तल लीजिए। और अगर इन सबके बाद भी ज़िंदगी मुश्किल बनी रहे तो समझिए कि आप वक़्त के साथ नहीं चल पा रहे हैं।

इस नए अर्थशास्त्र में हर समस्या का हल आम आदमी के पास है। दूध महँगा हो तो चाय में पानी बढ़ा लीजिए, सब्ज़ी महँगी हो तो दाल से दोस्ती कर लीजिए और दाल भी पहुँच से बाहर हो जाए तो अचार के साथ रोटी खाकर ज़बान को समझा दीजिए कि स्वाद भूख से बड़ा नहीं होता। पेट्रोल महँगा हो तो कम घूमिए, मकान का किराया बढ़े तो छोटा घर ढूँढ़िए। बच्चों की पढ़ाई महँगी हो जाए तो अपनी दूसरी ज़रूरतों में कटौती कीजिए।

यही है न्यू नॉर्मल; मुसीबत अपनी जगह खड़ी रहे और आदमी अपनी ज़रूरतों को समेटकर उसके लिए रास्ता बना दे।

बाज़ार ने भी इस फ़लसफ़े को अच्छी तरह समझ लिया है। सामान की क़ीमत बढ़ाना मुश्किल हो तो पैकेट छोटा कर दीजिए। ग्राहक को लगेगा कि वह वही पुरानी चीज़ उसी दाम में ख़रीद रहा है।

उधर नौकरी की दुनिया में भी 'न्यू नॉर्मल' क़ायम हो चुका है। पढ़े-लिखे नौजवान डिग्रियाँ लेकर घूम रहे हैं और उन्हें बताया जा रहा है कि अवसरों की कोई कमी नहीं है। बस, अवसर और नौजवान का आमना-सामना नहीं हो पा रहा। जिसे नौकरी मिल गई, वह उसे बचाए रखने की फ़िक्र में है। जिसे नहीं मिली, उसे समझाया जा रहा है कि नौकरी के पीछे क्यों भागते हो, ख़ुद अपना काम शुरू करो। पूँजी कहाँ से आएगी, ग्राहक कहाँ से मिलेंगे और घर कैसे चलेगा; ये छोटे-मोटे सवाल हैं, जिनका जवाब नौजवान को ख़ुद ढूँढ़ना चाहिए।

न्यू नॉर्मल का एक फ़ायदा यह भी है कि अब किसी को अपनी नाकामी स्वीकार नहीं करनी पड़ती। सरकारी और कारोबारी भाषा में भी कमाल की कारीगरी है। महँगाई वैश्विक समस्या है, बेरोज़गारी बदलती अर्थव्यवस्था का हिस्सा है, कम वेतन बाज़ार की मजबूरी है, महँगी शिक्षा को भविष्य में निवेश और महँगे इलाज को स्वास्थ्य क्षेत्र की बढ़ती लागत कहा जाता है। हर परेशानी के लिए एक अच्छा-सा नाम मौजूद है। नाम बदलते ही परेशानी थोड़ी सभ्य दिखाई देने लगती है।

शब्दों का ऐसा मेकअप किया जाता है कि समस्या आईने में ख़ुद को पहचानने से इनकार कर दे। इससे समस्या का चेहरा नहीं बदलता, केवल उसका नाम बदल दिया जाता है। जैसे घर की छत टपक रही हो और मालिक मरम्मत कराने के बजाय छत के नीचे बाल्टी रखकर घोषणा कर दे कि अब घर में वर्षा-जल संचयन की आधुनिक व्यवस्था है।

सबसे दिलचस्प बात तो यह है कि आम आदमी भी धीरे-धीरे इस व्यवस्था का आदी हो जाता है। महीने की शुरुआत में बजट बनाता है, बीच में उसमें काट-छाँट करता है और आख़िर में ख़ुद को तसल्ली देता है कि अगला महीना बेहतर होगा। अगला महीना आता है तो वही पुराना हिसाब नई तारीख़ के साथ सामने खड़ा मिलता है।

न्यू नॉर्मल का सबसे बड़ा सबक़ यही है कि मुश्किलें कम हों या न हों, आदमी को उनसे समझौता करना आना चाहिए। लेकिन एक बात समझ से बाहर है; अगर हर बार समझौता आम आदमी को ही करना है, तो फिर बदलाव किसके लिए हो रहा है?

कहीं ऐसा तो नहीं कि हमने समस्याओं को हल करने के बजाय उनके साथ जीने का हुनर सीख लिया है और अब इसी हुनर को विकास समझ बैठे हैं? क्योंकि इस नए अर्थशास्त्र की सबसे सबसे बड़ी सलाह है —'अब मुश्किल हालात में बेहतर ढंग से जीना सीखें!'

इस न्यू नॉर्मल अर्थव्यवस्था में आम आदमी का बजट किसी पुराने पुल जैसा है, जिस पर हर दिन बढ़ता हुआ बोझ रखा जा रहा है। पुल अभी खड़ा है, इसलिए सब मान लेते हैं कि व्यवस्था ठीक है, लेकिन उसकी दरारें काफ़ी गहरी हो चुकी हैं। ■■

“मज़दूर की
मज़दूरी उसका पसीना
सूखने से पहले
अदा कर दो।”

(हदीस : इब्ने-माजा)

A Well Wisher

Jamaat Islami Hind
Bilariyaganj
Azamgarh
(U.P.)

कटाक्ष

पर्यावरण समस्या और इस्लामी शिक्षाएं

❖संपादन प्रभाग

इस्लाम समस्त मानव-जाति के लिए रहमत और बरकत बनकर आया है। वह अपने मानने वालों से ऐसी बातों की अपेक्षा करता है, जिनसे केवल मुसलमान ही नहीं बल्कि पूरी मानवता और समस्त सृष्टि लाभान्वित हो सके। इस्लाम की स्पष्ट शिक्षाओं में से एक महत्वपूर्ण शिक्षा पर्यावरण को गन्दगी से पाक और स्वच्छ रखना है। वर्तमान समय में पर्यावरण प्रदूषण विश्व स्तर पर एक गंभीर समस्या बन चुका है। इस पर नियंत्रण पाना तो दूर, इसमें कमी लाना भी कठिन होता जा रहा है। ऐसे समय में इस्लामी शिक्षाएँ पर्यावरण संरक्षण के लिए महत्वपूर्ण मार्गदर्शन प्रदान करती हैं।



आज पेड़-पौधों की सुरक्षा और वृक्षारोपण पर विशेष ध्यान दिया जा रहा है, क्योंकि यह पर्यावरण प्रदूषण को रोकने में सहायक सिद्ध होता है। पेड़ों की कटाई को रोकने और अधिक से अधिक वृक्ष लगाने पर बल दिया जा रहा है। यह तथ्य उल्लेखनीय है कि लगभग चौदह सौ वर्ष पहले ही अरब के रेगिस्तानी वातावरण में हरियाली और वृक्षारोपण की ओर पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल०) ने ध्यान आकर्षित किया था। आपने अपने आचरण और शिक्षाओं के माध्यम से लोगों को इस दिशा में प्रेरित किया और विभिन्न अवसरों पर वृक्ष लगाने को पुण्य का कार्य बताया।

क़ुरआन में "शजर" अर्थात् पेड़-पौधों का उल्लेख अनेक स्थानों पर हुआ है। कृषि और उससे संबंधित विषयों का भी बार-बार उल्लेख मिलता है। इस्लाम ने पेड़ लगाने को नेक कार्यों में शामिल किया है। जिस प्रकार मनुष्य किसी भलाई के कार्य से स्वयं लाभान्वित होता है और दूसरों को भी लाभ पहुँचाता है, उसी प्रकार वृक्षारोपण भी ऐसा कार्य है जिससे मनुष्य, पशु-पक्षी और समूचा पर्यावरण लाभान्वित होता है।

इस्लाम ने वृक्षों की सुरक्षा पर विशेष बल दिया है। इस्लामी शासनकाल में जब सेनाएँ भेजी जाती थीं, तो उन्हें यह हिदायत दी जाती थी कि वे फलदार वृक्षों और हरियाली को नुक़सान न पहुँचाएँ। यह इस बात का प्रमाण है कि पर्यावरण संरक्षण इस्लामी शिक्षाओं का महत्वपूर्ण हिस्सा रहा है। जानवरों को भी अनावश्यक रूप से मारने से रोका गया, क्योंकि वे भी पर्यावरण और मानव जीवन के लिए उपयोगी हैं।

फलदार वृक्षों को काटने की अनुमति केवल अत्यंत आवश्यकता और विशेष परिस्थितियों में दी गयी है। अनेक इस्लामी विद्वानों ने बिना आवश्यकता पेड़ काटने को अनुचित ठहराया है। प्रसिद्ध विद्वान अल्लामा इब्ने-हज्र अस्कलानी ने स्पष्ट किया है कि वृक्षों की कटाई की अनुमति सामान्य नहीं, बल्कि केवल आवश्यकता और व्यापक हित को ध्यान में रखकर दी जा सकती है।

इस्लाम ने पर्यावरण को गंदा करने से भी सख़्ती से रोका है। पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल०) ने लोगों को उन स्थानों पर पाख़ाना-पेशाब करने से मना किया जहाँ लोग बैठते हों या छाया प्राप्त करते हों। हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि०) से रिवायत है कि पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल०) ने फ़रमाया :

"दो लानतों से बचो।"

सहाबियों ने पूछा : "वे दो लानतें क्या हैं?"

आपने फ़रमाया : "एक वह व्यक्ति जो लोगों के रास्ते में पाख़ाना या पेशाब करे और दूसरा वह जो लोगों की छाया वाली जगह में ऐसा करे।" (हदीस : मुस्लिम)

यह शिक्षा केवल व्यक्तिगत स्वच्छता तक सीमित नहीं है, बल्कि सार्वजनिक स्थानों और प्राकृतिक वातावरण को स्वच्छ रखने का संदेश भी देती है। इसी प्रकार छायादार वृक्षों के नीचे कूड़ा-करकट डालना या उन्हें नुक़सान पहुँचाना भी इस शिक्षा के विरुद्ध है।

इस्लाम ने अधिक से अधिक वृक्ष लगाने की प्रेरणा दी है। हज़रत अनस बिन मालिक (रज़ि०) से रिवायत है कि पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल०) ने फ़रमाया :

"यदि क़यामत आने लगे और तुममें से किसी के हाथ में पौधा हो, और उसे लगाने का अवसर हो, तो उसे लगा देना चाहिए।" (हदीस : मुस्नद अहमद)

इस हदीस में वृक्षारोपण की महत्ता और पर्यावरण संरक्षण की भावना स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। इसमें यह संदेश भी निहित है कि परिस्थितियाँ कैसी भी हों, मनुष्य को धरती को आबाद और हरा-भरा बनाने का प्रयास करते रहना चाहिए।

हज़रत उमर बिन ख़त्ताब (रज़ि०) से संबंधित एक घटना भी उल्लेखनीय है। उन्होंने एक वृद्ध व्यक्ति को अपनी ज़मीन में पेड़ लगाने के लिए प्रेरित किया। जब उस व्यक्ति ने अपनी वृद्धावस्था का हवाला दिया, तब हज़रत उमर (रज़ि०) स्वयं उसके साथ पेड़ लगाने लगे। यह घटना बताती है कि वृक्षारोपण केवल व्यक्तिगत लाभ का साधन नहीं, बल्कि सामाजिक और पर्यावरणीय ज़िम्मेदारी भी है।

इस्लाम में कृषि और बाग़बानी को अत्यंत सम्मानजनक कार्य माना गया है। इससे केवल मनुष्य ही नहीं, बल्कि पशु-पक्षी और अन्य जीव भी लाभान्वित होते हैं। हज़रत अनस (रज़ि०) से रिवायत है कि पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल०) ने फ़रमाया :

"जो भी मुसलमान कोई वृक्ष लगाए या खेती करे और उससे कोई इंसान, पक्षी या जानवर लाभ उठाए, तो उसके लिए वह सदक़ा है।" (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

इस्लामी दृष्टि में वृक्ष और खेती केवल आर्थिक साधन नहीं हैं, बल्कि वे समाज और पर्यावरण के लिए निरंतर लाभ का स्रोत हैं। फलदार वृक्ष मनुष्य को भोजन प्रदान करते हैं, जबकि अन्य वृक्ष छाया, स्वच्छ वायु और पर्यावरण संतुलन का माध्यम बनते हैं। वृक्षों की हरियाली आँखों को सुकून देती है और प्रदूषण को कम करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

इस्लाम ने भूमि को बेकार छोड़ने के बजाय उसे उपयोगी बनाने और खेती योग्य भूमि को आबाद करने की प्रेरणा दी है। कृषि योग्य भूमि का संरक्षण पर्यावरण संतुलन के लिए भी आवश्यक है। इस्लामी विद्वानों ने कृषि को सामूहिक ज़िम्मेदारी बताया है, क्योंकि इससे समाज की खाद्य आवश्यकताएँ पूरी होती हैं और प्राकृतिक संतुलन बना रहता है।

वर्तमान समय में पर्यावरण संकट का एक बड़ा कारण प्राकृतिक संसाधनों का अत्यधिक दोहन है। जंगलों की कटाई, जल स्रोतों का प्रदूषण और भूमि का विनाश मानव जीवन के लिए ख़तरा बन चुका है। इस्लाम संतुलन, संयम और ज़िम्मेदारी की शिक्षा देता है। वह फ़िज़ूलख़र्ची और अतिरेक से रोकता है तथा प्राकृतिक संसाधनों के विवेकपूर्ण उपयोग पर बल देता है।

इस्लाम की व्यापक शिक्षाओं का एक महत्वपूर्ण पहलू यह है कि वह जीवन के हर क्षेत्र में संतुलन बनाए रखने की प्रेरणा देता है। पर्यावरण संरक्षण भी इसी संतुलन का हिस्सा है। वृक्षारोपण, स्वच्छता, जल-संरक्षण और प्राकृतिक संसाधनों की रक्षा जैसी शिक्षाएँ आज के समय में और अधिक प्रासंगिक हो चुकी हैं।

आज पूरी दुनिया पर्यावरण संकट से जूझ रही है। जलवायु परिवर्तन, प्रदूषण और प्राकृतिक असंतुलन मानव सभ्यता के लिए गंभीर चुनौती बन चुके हैं। ऐसे समय में इस्लाम की शिक्षाएँ यह संदेश देती हैं कि प्रकृति केवल उपयोग की वस्तु नहीं, बल्कि ईश्वर की एक महान नेमत है, जिसकी सुरक्षा करना मनुष्य की नैतिक और सामाजिक ज़िम्मेदारी है। यदि इन शिक्षाओं को अपनाया जाए, तो पर्यावरण संरक्षण की दिशा में प्रभावी क़दम उठाए जा सकते हैं। ■■

विशेष आयोजन

मानवाधिकार : प्रकृति की आवाज़ और ईश्वरीय मार्गदर्शन

❖एफ़. ए. मुजीब

आज की दुनिया में मानवाधिकार एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण विषय बन चुका है। दुनिया के विभिन्न समाजों, संस्थाओं और सरकारों में मानवाधिकारों के संरक्षण की बात होती है। इसके लिए क़ानून बनाए जाते हैं, अंतरराष्ट्रीय घोषणापत्र तैयार किए जाते हैं और अन्याय तथा अत्याचार के विरुद्ध आवाज़ उठाई जाती है। यह मानव चेतना की एक सकारात्मक उपलब्धि है कि मनुष्य ने दूसरे मनुष्य के अधिकारों को स्वीकार करने और उनकी रक्षा करने की आवश्यकता महसूस की है। लेकिन इस पूरी चर्चा में एक बुनियादी सच्चाई अक्सर अनदेखी रह जाती है कि मनुष्य के अधिकारों की अवधारणा उसकी उत्पत्ति के साथ ही अस्तित्व में आ गई थी। ये अधिकार किसी सरकार, संसद, अदालत या अंतरराष्ट्रीय संस्था की देन नहीं हैं, बल्कि उस सृष्टिकर्ता की ओर से हैं, जिसने मनुष्य को पैदा किया, उसे सम्मान और गरिमा प्रदान की तथा उसके जीवन के लिए कुछ मूलभूत सिद्धान्त निर्धारित किए।

मानव इतिहास पर नज़र डालें तो एक ऐसी सच्चाई सामने आती है, जो समय, स्थान और सभ्यताओं के तमाम अन्तर के बावजूद कभी नहीं बदली। यह सच्चाई है मनुष्य के जीवन, सम्मान, स्वतंत्रता, न्याय और बुनियादी अधिकारों का आदर। दुनिया के किसी भी क्षेत्र में चले जाइए, किसी भी सभ्यता का अध्ययन कर लीजिए या किसी भी युग के समाज को देख लीजिए, कुछ मूल नैतिक सिद्धान्त हर जगह समान दिखाई देंगे।

मानव इतिहास पर नज़र डालें तो एक ऐसी सच्चाई सामने आती है, जो समय, स्थान और सभ्यताओं के तमाम अन्तर के बावजूद कभी नहीं बदली। यह सच्चाई है मनुष्य के जीवन, सम्मान, स्वतंत्रता, न्याय और बुनियादी अधिकारों का आदर। दुनिया के किसी भी क्षेत्र में चले जाइए, किसी भी सभ्यता का अध्ययन कर लीजिए या किसी भी युग के समाज को देख लीजिए, कुछ मूल नैतिक सिद्धान्त हर जगह समान दिखाई देंगे। निर्दोष की हत्या ग़लत है, अत्याचार निन्दनीय है, किसी का धन छीनना अनुचित है, माता-पिता का सम्मान होना चाहिए, बच्चों की सुरक्षा आवश्यक है, कमज़ोरों की सहायता की जानी चाहिए और सभी के साथ न्याय होना चाहिए। इन सिद्धान्तों को समझने के लिए न किसी विशेष भाषा की आवश्यकता है, न किसी ख़ास सभ्यता की और न ही किसी धार्मिक पहचान की। ये मानव प्रकृति की वह आवाज़ हैं, जिसे लगभग हर मनुष्य अपने भीतर महसूस करता है।

यहाँ एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न उठता है कि आख़िर दुनिया के अलग-अलग क्षेत्रों में रहने वाले मनुष्यों के बीच इन बुनियादी नैतिक सिद्धान्तों की समानता क्यों पाई जाती है? जब मनुष्यों की भाषाएँ अलग हैं, रहन-सहन भिन्न है, सभ्यताएँ अलग-अलग हैं, ऐतिहासिक अनुभव भिन्न हैं और जीवन के प्रति दृष्टिकोण में भी अन्तर है, तो फिर बुनियादी मानवाधिकारों और नैतिक मूल्यों में इतनी समानता कैसे है? क्या यह केवल संयोग है कि दुनिया का कोई भी सभ्य समाज निर्दोष की हत्या, अत्याचार, विश्वासघात और अन्याय को अच्छा नहीं मानता? क्या यह सम्भव है कि मनुष्यों के बीच यह बुनियादी समानता किसी साझा मूल स्रोत के बिना अस्तित्व में आ गई हो?

इसका एक स्वाभाविक उत्तर यह है कि मनुष्य चाहे कहीं भी पैदा हुआ हो, जिस वातावरण में भी पला-बढ़ा हो और जिस सभ्यता का भी हिस्सा रहा हो, उसकी मूल मानवीय संरचना एक जैसी है। उसके भीतर अच्छाई और बुराई का बोध, प्रेम और घृणा की अनुभूति, न्याय की आकांक्षा और अत्याचार के प्रति अस्वीकार का भाव मौजूद है। यही कारण है कि एक मनुष्य अपने साथ होने वाले अन्याय को जिस तरह ग़लत समझता है, उसी तरह दूसरे मनुष्य के साथ होने वाले अन्याय को भी सिद्धान्ततः अनुचित मानता

है। हालाँकि व्यावहारिक जीवन में स्वार्थ, पूर्वाग्रह और सत्ता का अहंकार मनुष्य को अपने ही स्वीकार किए हुए सिद्धान्तों से भटका देते हैं, लेकिन इसका अर्थ यह नहीं कि सिद्धान्त बदल गए हैं। इसका अर्थ केवल यह है कि मनुष्य अपनी स्वाभाविक चेतना के विरुद्ध आचरण कर रहा है।

यही वह बिन्दु है जहाँ मानव प्रकृति और ईश्वरीय मार्गदर्शन का सम्बन्ध समझ में आता है। यदि मनुष्य को पैदा करने वाली शक्ति ने उसे एक विशेष प्रकृति के साथ बनाया है, तो उसकी प्रकृति में अच्छाई-बुराई, न्याय-अन्याय और उचित-अनुचित के बीच बुनियादी अन्तर समझने की क्षमता का होना स्वाभाविक है। जिस प्रकार मनुष्य की शारीरिक संरचना, उसकी मूल आवश्यकताओं और भावनाओं में एक सृष्टिकर्ता की व्यवस्था और समानता दिखाई देती है, उसी प्रकार उसकी नैतिक चेतना में भी एक साझा व्यवस्था की झलक मिलती है। इस दृष्टि से मानवाधिकारों के बुनियादी सिद्धान्त किसी विशेष जाति, राष्ट्र या सभ्यता की खोज नहीं, बल्कि मनुष्य की उत्पत्ति से जुड़ी एक प्राकृतिक सच्चाई हैं। यही कारण है कि इन सिद्धान्तों को केवल मानवीय सहमति का परिणाम मानने के बजाय ईश्वरीय मार्गदर्शन की अभिव्यक्ति के रूप में देखना अधिक सार्थक प्रतीत होता है।

मानवाधिकारों के सन्दर्भ में इस्लाम की विशेषता यह है कि उसने इन अधिकारों को किसी राजा, सरकार या शक्तिशाली वर्ग की कृपा नहीं माना, बल्कि इन्हें सृष्टिकर्ता द्वारा निर्धारित दायित्वों और सीमाओं से जोड़ा। मनुष्य के जीवन, संपत्ति और सम्मान की रक्षा, महिलाओं और बच्चों के अधिकार, माता-पिता तथा रिश्तेदारों के प्रति सद्भाव, अनाथों और ज़रूरतमंदों की सहायता, मज़दूर की मेहनत का उचित प्रतिफल, पड़ोसियों के साथ अच्छा व्यवहार और न्याय की स्थापना इसी व्यापक दृष्टिकोण के विभिन्न पहलू हैं।

इतिहास का अध्ययन करने पर भी यह स्पष्ट होता है कि मानव सभ्यता के विभिन्न युगों में बुनियादी नैतिक शिक्षाएँ किसी न किसी रूप में मौजूद रही हैं। अलग-अलग क्षेत्रों और समुदायों में आने वाले पैग़म्बरों तथा सुधारकों ने मनुष्य को एक-दूसरे के अधिकारों का सम्मान करने, सत्य, ईमानदारी, न्याय, दया, वचनपालन, माता-पिता की सेवा और कमज़ोरों की सहायता करने की शिक्षा दी। इन शिक्षाओं की भाषा और कुछ व्यावहारिक रूप भले ही अलग रहे हों, लेकिन उनका मूल सन्देश एक-दूसरे से मिलता-जुलता दिखाई देता है। इस समानता को इस तथ्य के सन्दर्भ में समझा जा सकता है कि पूरी मानवता का सृष्टिकर्ता एक है और मानव प्रकृति का मूल स्रोत भी एक ही है। जब सृष्टिकर्ता एक है, तो उसकी सृष्टि के लिए बुनियादी नैतिक मार्गदर्शन में एकरूपता होना भी स्वाभाविक है।

इसी सन्दर्भ में इस्लाम की अवधारणा एक व्यापक और सार्वभौमिक स्वरूप में सामने आती है। इस्लाम किसी विशेष जाति, नस्ल या भौगोलिक क्षेत्र से शुरू होने वाली सीमित धार्मिक व्यवस्था नहीं, बल्कि वह सार्वभौमिक दीन-ए-फ़ितरत है, जिसकी मूल शिक्षा प्रथम मानव हज़रत आदम से आरम्भ हुई और विभिन्न युगों तथा समुदायों में पैग़म्बरों के माध्यम से मानवता तक पहुँचती रही। इस सन्देश का मूल आधार एक ईश्वर की उपासना, मानव प्रकृति की पवित्रता, नैतिकता, न्याय और एक-दूसरे के अधिकारों का सम्मान था। हज़रत मुहम्मद मुस्तफ़ा (सल्ल.)पर इसी दीन का अन्तिम और पूर्ण स्वरूप प्रदान किया गया। इस दृष्टि से इस्लाम की पूर्णता केवल आस्था और उपासना के सिद्धान्तों की पूर्णता नहीं, बल्कि मानव जीवन के व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक और सामूहिक पहलुओं के लिए व्यापक मार्गदर्शन की पूर्णता भी है।

मानवाधिकारों के सन्दर्भ में इस्लाम की विशेषता यह है कि उसने इन अधिकारों को किसी राजा, सरकार या शक्तिशाली वर्ग की कृपा नहीं माना, बल्कि इन्हें सृष्टिकर्ता द्वारा निर्धारित दायित्वों और सीमाओं से जोड़ा। मनुष्य के जीवन, संपत्ति और सम्मान की रक्षा, महिलाओं और बच्चों के अधिकार, माता-पिता तथा रिश्तेदारों के प्रति सद्भाव, अनाथों और ज़रूरतमंदों की सहायता, मज़दूर की मेहनत का उचित प्रतिफल, पड़ोसियों के साथ अच्छा व्यवहार और न्याय की स्थापना इसी व्यापक दृष्टिकोण के विभिन्न पहलू हैं। इन शिक्षाओं की विशेषता यह है कि ये

केवल किसी विशेष धार्मिक समुदाय तक सीमित नहीं हैं, बल्कि मानवीय सम्बन्धों के व्यापक दायरे में मार्गदर्शन प्रदान करती हैं।

इस्लाम की मानवाधिकार सम्बन्धी अवधारणा की एक और महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि वह अधिकारों को केवल माँगों की सूची नहीं बनाता, बल्कि उनकी रक्षा के लिए मनुष्य के भीतर एक स्थायी नैतिक चेतना पैदा करता है। दुनिया के क़ानून मनुष्य को अपराध करने से रोकने और अपराध के बाद दंड देने का प्रयास करते हैं, लेकिन हर स्थान और हर समय क़ानून लागू करना सम्भव नहीं होता। कोई व्यक्ति किसी कमज़ोर का शोषण उस समय भी कर सकता है, जब वहाँ कोई अदालत, पुलिस या गवाह मौजूद न हो। ऐसे में प्रश्न उठता है कि उसे अन्याय से कौन रोकेगा? इस्लाम इसका उत्तर मनुष्य के भीतर मौजूद जवाबदेही की भावना में तलाश करता है। जब मनुष्य यह समझता है कि उसके प्रत्येक कर्म का हिसाब उस सत्ता के सामने होना है, जो उसके बाहरी व्यवहार के साथ-साथ उसके अन्तर्मन से भी परिचित है, तो अधिकारों का सम्मान उसके लिए केवल क़ानूनी बाध्यता नहीं रह जाता, बल्कि उसके विश्वास और चरित्र का हिस्सा बन जाता है।

आज मानवाधिकारों के नाम पर दुनिया भर में जो प्रयास किए जा रहे हैं, उनका महत्त्व अस्वीकार नहीं किया जा सकता। अंतरराष्ट्रीय घोषणापत्र, संविधान, क़ानून और मानवाधिकार संस्थाएँ सामाजिक न्याय की स्थापना में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकती हैं। लेकिन इन तमाम प्रयासों के बावजूद यदि शक्तिशाली कमज़ोरों का शोषण करता रहे, धनवान ग़रीबों का अधिकार छीनता रहे, समाज में महिलाएँ, बच्चे और बुज़ुर्ग असुरक्षित रहें तथा राष्ट्र अपने हितों के लिए मानव जीवन को महत्त्वहीन समझने लगें, तो यह स्पष्ट हो जाता है कि केवल क़ानून मानवाधिकारों की रक्षा के लिए पर्याप्त नहीं हैं। आवश्यकता इस बात की है कि मनुष्य के भीतर उस स्वाभाविक नैतिक चेतना को भी जागृत किया जाए, जो उसे दूसरे मनुष्य के दुख, पीड़ा और अधिकारों का एहसास कराती है।

वास्तव में मानवाधिकारों की पूरी चर्चा हमें एक बुनियादी सच्चाई की ओर ले जाती है। मनुष्य ने अधिकारों की आवश्यकता का आविष्कार नहीं किया, बल्कि यह आवश्यकता उसकी उत्पत्ति के साथ ही मौजूद थी। दुनिया की विभिन्न सभ्यताओं और समाजों में इन सिद्धान्तों की समानता इस बात का एक विचारणीय प्राकृतिक संकेत है कि मानव प्रकृति का मूल स्रोत साझा है। इस्लाम इसी साझा प्रकृति का ईश्वरीय मार्गदर्शन है, जो हज़रत आदम से आरम्भ होकर पैग़म्बर हज़रत मुहम्मद (सल्ल.) पर अपने अन्तिम और पूर्ण स्वरूप में मानवता को प्रदान किया गया। इसलिए मानवाधिकारों की वास्तविक रक्षा केवल अधिकारों की माँग करने से नहीं, बल्कि उस सृष्टिकर्ता के मार्गदर्शन को समझने और उसके अनुसार जीवन जीने से सम्भव है, जिसने मनुष्य को अधिकार भी दिए हैं और उनके सम्मान तथा संरक्षण की ज़िम्मेदारी भी सौंपी है। ■■

कान्ति मासिक के सभी पाठक

कृपया ध्यान दें !

अपना पूरा नाम : .....

पता : .....

पोस्ट ऑफिस : .....

डिस्ट्रिक्ट : .....स्टेट : .....पिन : .....

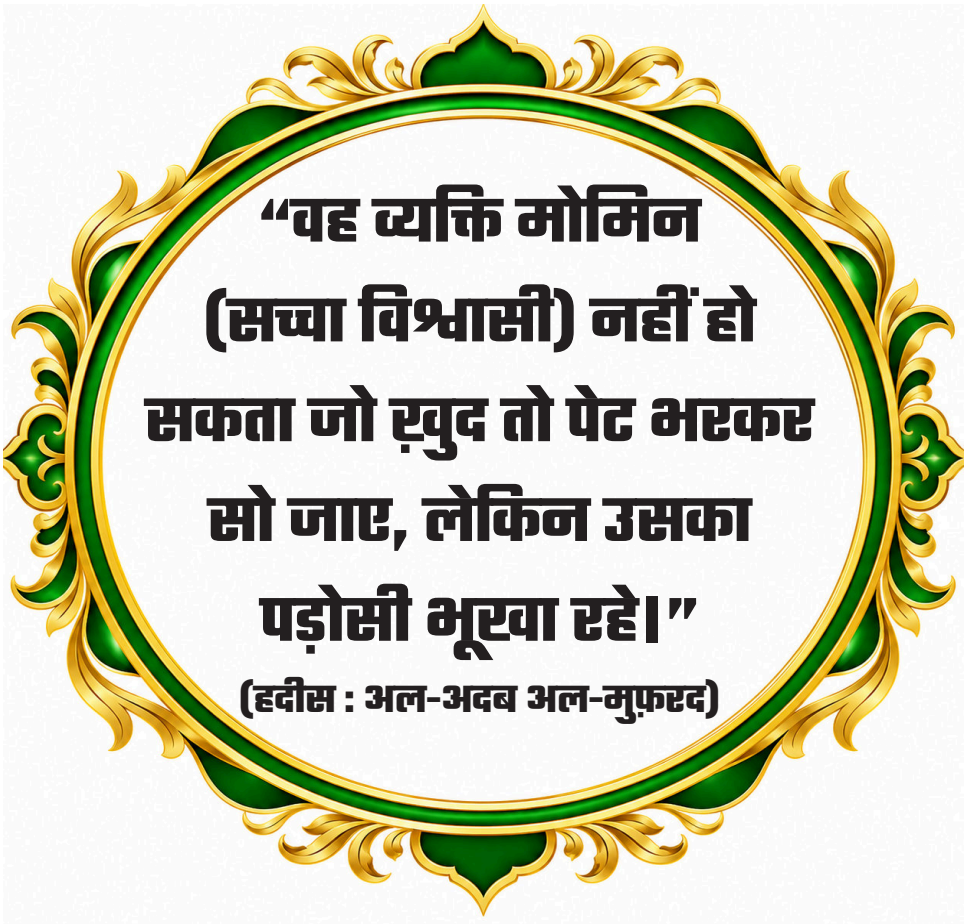
कांटेक्ट नंबर : .....

नीचे दिए गए व्हाट्सऐप नम्बर पर भेजने की मेहरबानी करें।

धन्यवाद!

व्हाट्सऐप नंबर : 98187 99223

नोट : अपना कांटेक्ट नंबर लिखना न भूलें।



A Well Wisher

Majid Ali

Muzaffar Nagar

(U.P.)

विशेष आयोजन

सभ्यताओं का साझा संघर्ष और मानवीय गरिमा का सवाल

प्राचीन परम्पराओं से आधुनिक अन्तरराष्ट्रीय व्यवस्था तक : पश्चिमी योगदान, इस्लामी दृष्टिकोण और समकालीन चुनौतियाँ

❖डॉ. मुहम्मद इक़बाल सिद्दीक़ी

मानव सभ्यता की प्रगति का मूल्यांकन केवल उसकी वैज्ञानिक उपलब्धियों, आर्थिक समृद्धि या राजनीतिक संस्थाओं से नहीं किया जा सकता। उसकी वास्तविक पहचान इस बात से होती है कि वह अपने सबसे कमज़ोर और वंचित व्यक्ति के साथ कैसा व्यवहार करती है। क्या हर व्यक्ति को सम्मानपूर्वक जीने, विचार व्यक्त करने, अपने विश्वास के अनुसार जीवन बिताने और अन्याय के विरुद्ध आवाज़ उठाने का अधिकार है? क्या क़ानून की निगाह में सभी समान हैं? यही मानवाधिकारों के बुनियादी प्रश्न हैं।

मानवाधिकार आधुनिक लोकतंत्र की आधारशिला हैं, लेकिन इनका इतिहास केवल पश्चिमी विचारों से शुरू नहीं होता। गरिमा, न्याय, समानता और उत्पीड़न के विरोध की धारणाएँ अनेक सभ्यताओं और धार्मिक परम्पराओं में मिलती हैं। इस्लाम तो जीवन, न्याय, धार्मिक स्वतंत्रता और सामाजिक उत्तरदायित्व को विशेष महत्त्व देता है।

मानवाधिकार : अर्थ और अवधारणा

मानवाधिकार वे बुनियादी अधिकार और स्वतंत्रताएँ हैं, जो प्रत्येक व्यक्ति को केवल मनुष्य होने के कारण प्राप्त हैं। इनके लिए धर्म, जाति, नस्ल, भाषा, लिंग, राष्ट्रीयता, आर्थिक स्थिति, शैक्षिक योग्यता या राजनीतिक विचारधारा कोई शर्त नहीं है। जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता, समानता, विचार एवं अभिव्यक्ति, धार्मिक आस्था, शिक्षा, स्वास्थ्य, रोज़गार, निष्पक्ष न्याय और यातना से सुरक्षा इनके प्रमुख उदाहरण हैं।

ये अधिकार सार्वभौमिक, अविभाज्य और परस्पर निर्भर हैं। शिक्षा और स्वास्थ्य के बिना स्वतंत्रता का वास्तविक उपयोग कठिन है। वे राज्य की शक्ति पर सीमाएँ लगाते हैं और उसे व्यक्ति की रक्षा का दायित्व सौंपते हैं। कुछ अधिकारों पर उचित क़ानूनी प्रतिबन्ध सम्भव हैं, लेकिन यातना और दासता निषिद्ध हैं। मानवाधिकार राज्य की कृपा नहीं, उसकी ज़िम्मेदारी हैं।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

मानवीय गरिमा, न्याय और समानता के विचार प्राचीन सभ्यताओं में भी मौजूद थे। मेसोपोटामिया के हम्मूराबी क़ानून-संग्रह में दण्ड, संपत्ति और सामाजिक व्यवस्था के नियम मिलते हैं। प्राचीन भारत में बौद्ध परम्परा ने करुणा और अहिंसा पर बल दिया, जबकि सम्राट अशोक के अभिलेखों में धार्मिक सहिष्णुता तथा प्रजा-कल्याण के विचार दिखाई देते हैं। यूनानी दर्शन में न्याय और नागरिकता पर विमर्श मौजूद है, जबकि रोमन विधि ने बाद की क़ानूनी परम्पराओं को प्रभावित किया।

इन्हें आधुनिक मानवाधिकारों का पूर्ण विकसित रूप नहीं कहा जा सकता। प्राचीन समाजों में दासता, लैंगिक असमानता, जन्म-आधारित भेदभाव और सीमित नागरिकता मौजूद थे। फिर भी इन विचारों ने न्याय और शासकीय दायित्वों पर बहस की बुनियाद रखी। यहूदी, ईसाई, इस्लामी और बौद्ध परम्पराओं ने भी करुणा, परोपकार और कमज़ोरों की सहायता पर बल दिया।

आधुनिक विकास में पश्चिम की भूमिका

आधुनिक मानवाधिकारों के क़ानूनी और राजनीतिक

विकास में यूरोप तथा अमेरिका की कुछ ऐतिहासिक घटनाओं ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

मैग्नाकार्टा, 1215 : इंग्लैंड के राजा जॉन और विद्रोही सामन्तों के संघर्ष से जन्मे इस दस्तावेज़ ने राजसत्ता पर कुछ सीमाएँ लगाईं और यह विचार मज़बूत किया कि शासक भी क़ानून से ऊपर नहीं है। इसके कई प्रावधान सामन्तों के हितों तक सीमित थे, फिर भी क़ानून के शासन और मनमानी सत्ता पर अंकुश के इतिहास में इसका महत्त्व है।

अमेरिकी स्वतंत्रता की घोषणा, 1776 ई. : इस घोषणा ने कहा कि सभी मनुष्य समान पैदा हुए हैं और उन्हें जीवन, स्वतंत्रता तथा सुख की खोज के अविच्छेद्य अधिकार प्राप्त हैं। शासन की वैधता को शासितों की सहमति से जोड़ना इसका महत्त्वपूर्ण योगदान था। लेकिन अमेरिका में दासता जारी रही और अश्वेतों, महिलाओं तथा मूलनिवासी समुदायों को समान अधिकार नहीं मिले। यह सिद्ध करता है कि सिद्धान्तों की घोषणा और उनका पालन अलग-अलग बातें हैं।

फ़्रांसीसी क्रांति, 1789 ई. : क्रांति ने स्वतंत्रता, समानता और बन्धुत्व के आदर्शों को वैश्विक राजनीतिक विमर्श में स्थापित किया। अगस्त 1789 की मनुष्य और नागरिक के अधिकारों की घोषणा ने स्वतंत्रता, संपत्ति, सुरक्षा, उत्पीड़न के प्रतिरोध और क़ानून के समक्ष समानता को महत्त्व दिया। फिर भी महिलाओं को तत्काल समान राजनीतिक अधिकार नहीं मिले और उपनिवेशों में दासता तथा नस्लीय असमानता बनी रही।

इसके बाद श्रमिक, महिला-अधिकार, दासता-विरोधी और उपनिवेशवाद-विरोधी आन्दोलनों ने अधिकारों का दायरा बढ़ाया। द्वितीय विश्वयुद्ध में नाज़ी अत्याचारों और नरसंहार ने यह स्पष्ट किया कि मानव सुरक्षा केवल किसी राज्य का आन्तरिक मामला नहीं हो सकती। संयुक्त राष्ट्र ने 10 दिसम्बर 1948 को मानवाधिकारों की सार्वभौम घोषणा (UDHR) स्वीकार की। इसके 30 अनुच्छेद जीवन, स्वतंत्रता, समानता, न्याय, शिक्षा, काम और सामाजिक सुरक्षा सहित व्यापक अधिकारों को रेखांकित करते हैं। यह स्वयं सन्धि नहीं है, लेकिन इसे आधुनिक अन्तरराष्ट्रीय मानवाधिकार व्यवस्था का आधारभूत दस्तावेज़ माना गया।

“प्राचीन समाजों में दासता, लैंगिक असमानता, जन्म-आधारित भेदभाव और सीमित नागरिकता मौजूद थे। फिर भी इन विचारों ने न्याय और शासकीय दायित्वों पर बहस की बुनियाद रखी। यहूदी, ईसाई, इस्लामी और बौद्ध परम्पराओं ने भी करुणा, परोपकार और कमज़ोरों की सहायता पर बल दिया।”

क्या मानवाधिकार पश्चिम की देन हैं?

वैसे तो पश्चिमी देशों ने आधुनिक अन्तरराष्ट्रीय क़ानूनी व्यवस्था के निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई, लेकिन गरिमा, न्याय और समानता किसी एक सभ्यता की बौद्धिक सम्पत्ति नहीं। इतिहास को केवल पश्चिमी दस्तावेज़ों तक सीमित करना अन्य परम्पराओं की उपेक्षा होगी। फिर भी प्राचीन धार्मिक शिक्षाओं को आधुनिक मानवाधिकारों का पूर्ण विकसित स्वरूप नहीं कहा जा सकता; उनके योगदान को ऐतिहासिक सन्दर्भ में समझना चाहिए।

इस्लामी दृष्टिकोण इस विमर्श का महत्त्वपूर्ण हिस्सा है। क़ुरआन कहता है : “और निश्चय ही हमने आदम की सन्तान को प्रतिष्ठा प्रदान की।” (17:70)। यह कथन मनुष्य की गरिमा को व्यापक आधार देता है। एक अन्य आयत में कहा गया है : “ऐ लोगो! हमने तुम्हें एक पुरुष और एक स्त्री से पैदा किया और तुम्हें जातियों और क़बीलों में बाँटा, ताकि तुम एक-दूसरे को पहचानो। अल्लाह के निकट तुममें सबसे प्रतिष्ठित वह है, जो सबसे अधिक परहेज़गार है।” (49:13)। यह वंश, नस्ल और क़बीलाई श्रेष्ठता को नैतिक श्रेष्ठता का आधार मानने से रोकता है।

जीवन की सुरक्षा के सम्बन्ध में क़ुरआन कहता है : “जिसने किसी व्यक्ति की हत्या की—बिना इसके कि उसने किसी की हत्या की हो या धरती में बिगाड़ फैलाया हो—तो मानो उसने समस्त मनुष्यों की हत्या कर दी; और जिसने किसी की जान बचाई, तो मानो उसने समस्त मनुष्यों की जान बचाई।” (5:32)। यद्यपि इस आयत का मूल सम्बोधन इस्राईल की सन्तान से है, लेकिन इसमें व्यक्त जीवन के महत्त्व का सन्देश व्यापक है।

क़ुरआन न्याय को अपने समुदाय तक सीमित नहीं रखता : “किसी समुदाय की शत्रुता तुम्हें न्याय न करने पर न

उकसाए। न्याय करो; यही परहेज़गारी के अधिक निकट है।" (5:8) धार्मिक स्वतंत्रता के बारे में उसका निर्देश है : "धर्म के मामले में कोई ज़बरदस्ती नहीं है।" (2:256)। ये शिक्षाएँ न्याय, निष्पक्षता और आस्था की स्वतंत्रता के महत्त्व को रेखांकित करती हैं।

इस्लामी शिक्षाओं में अनाथों, निर्धनों और वंचितों की सहायता, दासों की मुक्ति तथा आर्थिक न्याय पर भी बल है। ज़कात और सदक़ा सामाजिक उत्तरदायित्व की भावना को व्यक्त करते हैं। अंतिम पैग़म्बर हज़रत मुहम्मद (सल्ल.) के उपदेशों में जीवन, संपत्ति और सम्मान की सुरक्षा पर बहुत ज़ोर दिया गया है। 'मदीना का दस्तावेज़' भी विभिन्न धार्मिक समुदायों के पारस्परिक सम्बन्धों और दायित्वों के अध्ययन का महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक स्रोत है।

यह विडम्बना है कि इन आदर्शों के बावजूद मुस्लिम शासकों, समाजों और व्यक्तियों के आचरण में अनेक अवसरों पर अल्पसंख्यकों, महिलाओं, दासों और राजनीतिक विरोधियों के अधिकारों का उल्लंघन हुआ। यही स्थिति पश्चिमी समाजों और उनके इतिहास में भी देखने को मिलती है, जहाँ स्वतंत्रता और समानता के उदात्त आदर्शों के बावजूद उपनिवेशवाद, नस्लीय भेदभाव और दास-प्रथा जैसी व्यवस्थाएँ लम्बे समय तक क़ायम रहीं। इससे स्पष्ट होता है कि किसी परम्परा के मूल आदर्शों और उसके अनुयायियों के वास्तविक आचरण में अन्तर हो सकता है। इसलिए मूल्यांकन का आधार उसके सिद्धान्तों के साथ-साथ उन पर अमल का इतिहास भी होना चाहिए।

मानवाधिकारों की असली पहचान घोषणाओं की भव्यता में नहीं, बल्कि उस व्यक्ति की सुरक्षा में है जिसके पास अपनी रक्षा के लिए न सत्ता है, न धन और न प्रभाव। किसी समाज की सभ्यता का सबसे विश्वसनीय प्रमाण यही है कि वह अपने सबसे कमज़ोर व्यक्ति के अधिकारों की रक्षा कितनी ईमानदारी से करता है।

वर्तमान की चुनौतियाँ

युद्ध, विस्थापन, नस्लीय-धार्मिक भेदभाव, महिलाओं के विरुद्ध हिंसा, बालश्रम, मानव तस्करी और असहमति का दमन आज भी मानव गरिमा को चुनौती देते हैं। डिजिटल निगरानी, निजी जानकारी का दुरुपयोग और कृत्रिम बुद्धिमत्ता से भेदभाव नई समस्याएँ हैं। भूख, बेरोज़गारी तथा शिक्षा-स्वास्थ्य तक सीमित पहुँच भी बताती है कि औपचारिक स्वतंत्रता गरिमापूर्ण जीवन की गारण्टी नहीं।

भारत का संविधान इस दिशा में महत्त्वपूर्ण आधार देता है। अनुच्छेद 14 समानता, अनुच्छेद 19 बुनियादी स्वतंत्रताओं, अनुच्छेद 21 जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता तथा अनुच्छेद 25 अन्तःकरण और धर्म की स्वतंत्रता की रक्षा करता है। अनुच्छेद 32 मौलिक अधिकारों के प्रवर्तन के लिए सर्वोच्च न्यायालय जाने का अधिकार देता है। लेकिन संवैधानिक गारण्टियाँ तभी सार्थक हो सकती हैं, जब उनका निष्पक्ष क्रियान्वयन हो। पहचान के आधार पर भेदभाव, संस्थागत पक्षपात, निष्पक्ष सुनवाई से वंचित करना और असहमति को अपराध मानना इन अधिकारों को कमज़ोर करते हैं। स्वतंत्र न्यायपालिका, जवाबदेह प्रशासन, निष्पक्ष पुलिस, स्वतंत्र मीडिया और सक्रिय नागरिक समाज उनकी रक्षा के लिए आवश्यक हैं।

मानव गरिमा सर्वोपरि

मानवाधिकार किसी एक देश, धर्म या सभ्यता की प्रतिष्ठा का विषय नहीं, बल्कि प्रत्येक मनुष्य की गरिमा, स्वतंत्रता और सुरक्षा की बुनियादी शर्त हैं। पश्चिम ने इनके आधुनिक क़ानूनी विकास में योगदान दिया; विभिन्न सभ्यताओं और धार्मिक परम्पराओं ने इनके नैतिक आधार को समृद्ध किया। इस्लाम की शिक्षाएँ भी जीवन, न्याय, धार्मिक स्वतंत्रता और वंचितों के अधिकारों पर बल देकर इस साझा विमर्श में महत्त्वपूर्ण स्थान रखती हैं। किसी परम्परा की श्रेष्ठता केवल उसके आदर्शों से नहीं, बल्कि उन्हें व्यवहार में लागू करने से सिद्ध होती है। मानवाधिकारों की वास्तविक कसौटी यह है कि बहुसंख्यक और अल्पसंख्यक, शक्तिशाली और कमज़ोर, समर्थक और विरोधी—सभी को समान न्याय मिले और राज्य की शक्ति व्यक्ति की गरिमा की रक्षक बने।

मानवाधिकारों की असली पहचान घोषणाओं की भव्यता में नहीं, बल्कि उस व्यक्ति की सुरक्षा में है जिसके पास अपनी रक्षा के लिए न सत्ता है, न धन और न प्रभाव। किसी समाज की सभ्यता का सबसे विश्वसनीय प्रमाण यही है कि वह अपने सबसे कमज़ोर व्यक्ति के अधिकारों की रक्षा कितनी ईमानदारी से करता है। ■■

A Well Wisher

Ayesha Khan
Mapusa
Goa

"वह शरीर कभी जन्नत में प्रवेश नहीं कर सकता जिसका पालन-पोषण हराम (अवैध) कमाई से हुआ हो।"

(हदीस : तिर्मिज़ी)

विशेष आयोजन

समकालीन विश्व में मानवाधिकारों के उल्लंघन की त्रासदी

❖सुफ़ियान अहमद

मानव सभ्यता के विकास का मूल्यांकन केवल उसकी वैज्ञानिक उपलब्धियों, आर्थिक समृद्धि और तकनीकी प्रगति से नहीं किया जा सकता। इसका वास्तविक पैमाना यह भी है कि समाज अपने सबसे कमज़ोर व्यक्ति के साथ कैसा व्यवहार करता है। किसी देश की संपन्नता, उसकी सैन्य शक्ति और उसकी अंतरराष्ट्रीय प्रतिष्ठा तभी सार्थक हैं, जब वहाँ रहने वाले लोगों को जीवन, स्वतंत्रता, समानता और सम्मान के साथ जीने का अवसर मिले। लेकिन समकालीन विश्व की स्थिति पर नज़र डालें तो एक गहरा विरोधाभास सामने आता है। एक ओर मानवाधिकारों की रक्षा के लिए अंतरराष्ट्रीय घोषणाएँ, क़ानून और संस्थाएँ मौजूद हैं, वहीं दूसरी ओर युद्ध, नस्लीय भेदभाव, धार्मिक उत्पीड़न, राजनीतिक दमन और आर्थिक असमानता के कारण लाखों लोगों का जीवन प्रभावित हो रहा है।

10 दिसंबर, 1948 को संयुक्त राष्ट्र महासभा ने मानवाधिकारों की सार्वभौम घोषणा को स्वीकार किया था। इसी ऐतिहासिक घटना की याद में प्रतिवर्ष 10 दिसंबर को अंतरराष्ट्रीय मानवाधिकार दिवस (Human Rights Day) मनाया जाता है। सवाल यह है कि जब मानवाधिकारों के सिद्धांतों को विश्व समुदाय व्यापक रूप से स्वीकार कर चुका है, तब उनका उल्लंघन लगातार क्यों हो रहा है? क्या समस्या अधिकारों की अवधारणा में है, उनके क्रियान्वयन में या उस राजनीतिक व्यवस्था में, जो कुछ लोगों के अधिकारों को दूसरों की तुलना में अधिक महत्त्व देती है?

मानवाधिकारों की सार्वभौम घोषणा : एक ऐतिहासिक पहल

द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान हुए भीषण नरसंहार, यातना, नस्लीय उत्पीड़न और व्यापक मानवीय विनाश ने दुनिया को यह सोचने पर विवश किया कि मनुष्य के मूलभूत अधिकारों की रक्षा केवल किसी देश की आंतरिक व्यवस्था पर नहीं छोड़ी जा सकती। इसी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में संयुक्त राष्ट्र महासभा ने मानवाधिकारों की सार्वभौम घोषणा (Universal Declaration of Human Rights—UDHR) को स्वीकार किया। इसमें 30 अनुच्छेद हैं, जिनमें जीवन, स्वतंत्रता, समानता, शिक्षा, काम, सामाजिक सुरक्षा और सम्मानजनक जीवन सहित अनेक मूलभूत अधिकारों को मान्यता दी गई है। संयुक्त राष्ट्र के अनुसार, यह घोषणा अंतरराष्ट्रीय मानवाधिकार क़ानून के विकास की बुनियाद बनी और इसने आगे चलकर अनेक अंतरराष्ट्रीय संधियों को प्रेरित किया।

इस घोषणा का सबसे महत्त्वपूर्ण सिद्धांत यह है कि सभी मनुष्य जन्म से स्वतंत्र हैं और गरिमा तथा अधिकारों में समान हैं। किसी व्यक्ति के अधिकार उसकी नस्ल, रंग, भाषा, धर्म, लिंग, राष्ट्रीयता, सामाजिक स्थिति या राजनीतिक विचारों के आधार पर तय नहीं किए जा सकते।

घोषणा का अनुच्छेद 3 जीवन, स्वतंत्रता और व्यक्तिगत सुरक्षा का अधिकार देता है। अनुच्छेद 5 यातना और अमानवीय व्यवहार के विरुद्ध सुरक्षा की बात करता है, जबकि अनुच्छेद 9 मनमानी गिरफ़्तारी और हिरासत का निषेध करता है। अनुच्छेद 19 विचार और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता तथा अनुच्छेद 25 पर्याप्त जीवन-स्तर, भोजन, आवास और स्वास्थ्य से जुड़ी आवश्यकताओं को मान्यता देता है।

घोषणा और वास्तविकता का अंतर

किसी अधिकार को क़ानून में दर्ज कर देना और उसे वास्तविक जीवन में सुनिश्चित करना दो अलग-अलग बातें हैं। लोकतांत्रिक देशों के संविधान समानता, स्वतंत्रता और न्याय की गारंटी देते हैं, लेकिन इन अधिकारों का लाभ सभी नागरिकों तक समान रूप से नहीं पहुँचता। कहीं आर्थिक हैसियत न्याय तक पहुँच को प्रभावित करती है, कहीं सामाजिक पहचान व्यक्ति के अवसर सीमित करती है और

कहीं सत्ता की आलोचना करने वालों को दमन का सामना करना पड़ता है।

एक ग़रीब व्यक्ति के लिए न्याय प्राप्त करना लंबी और महँगी प्रक्रिया बन जाए, तो क़ानून के सामने समानता का सिद्धांत व्यवहार में कमज़ोर पड़ जाता है। किसी समुदाय के व्यक्ति को केवल उसकी धार्मिक या जातीय पहचान के कारण संदेह की नज़र से देखा जाए, तो समान नागरिकता का विचार प्रभावित होता है। इसी तरह, यदि किसी नागरिक को सरकारी नीतियों की आलोचना करने, शांतिपूर्ण विरोध करने या अपनी बात सार्वजनिक रूप से रखने के कारण प्रताड़ित किया जाए, तो अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता केवल काग़ज़ी अधिकार बनकर रह जाती है।

मानवाधिकारों का प्रश्न केवल पुलिस, अदालत और सरकार के व्यवहार तक सीमित नहीं है। भूख, अशिक्षा, बेरोज़गारी, असुरक्षित कार्यस्थल, बालश्रम और स्वास्थ्य सेवाओं की अनुपलब्धता भी मानव गरिमा को प्रभावित करती हैं। हर सामाजिक या आर्थिक कठिनाई अपने आप में मानवाधिकार उल्लंघन का प्रमाण नहीं होती। लेकिन जब भेदभावपूर्ण नीतियों, जानबूझकर की गई उपेक्षा या राज्य की क़ानूनी ज़िम्मेदारियों के उल्लंघन के कारण लोग अपने मूलभूत अधिकारों से वंचित होते हैं, तब यह गंभीर मानवाधिकार का प्रश्न बन जाता है।

युद्ध और विस्थापन : सबसे बड़ी मानवीय त्रासदियां

समकालीन विश्व में युद्ध मानवाधिकारों के उल्लंघन का सबसे भयावह रूप बनकर सामने आया है। आधुनिक हथियारों, मिसाइलों और ड्रोन की बढ़ती मारक क्षमता ने युद्ध का स्वरूप बदल दिया है। इसकी सबसे बड़ी क़ीमत आम नागरिकों को चुकानी पड़ती है। घर उजड़ते हैं, अस्पताल तबाह होते हैं, बच्चे शिक्षा से वंचित होते हैं और परिवार अपने ही देश में शरणार्थी बनकर रहने को मजबूर हो जाते हैं।

ग़ज़ा में युद्धविराम के बावजूद मानवीय संकट इस वास्तविकता का एक गंभीर उदाहरण है। ऑफ़िस फ़ॉर द कोऑर्डिनेशन ऑफ़ ह्यूमैनिटेरियन अफ़ेयर्स (OCHA) की 19 अक्टूबर 2026 को प्रकाशित रिपोर्ट के अनुसार, ग़ज़ा में हवाई हमलों, गोलाबारी और गोलीबारी के कारण नागरिकों के हताहत होने की घटनाएँ जारी रहीं। लगभग 9.5 लाख विस्थापित लोग ऐसे स्थानों पर रह रहे थे, जहाँ बारिश और बाढ़ का मध्यम से गंभीर ख़तरा था। रिपोर्ट के मुताबिक़, बारिश के मौसम में आश्रय सहायता की ज़रूरत वाले 2,94,250 परिवारों में से केवल लगभग 18 प्रतिशत की ज़रूरतें पूरी करने लायक़ सामग्री उपलब्ध थी। ईंधन, दवाओं और आवश्यक उपकरणों की कमी से स्वास्थ्य तथा जलापूर्ति सेवाएँ भी प्रभावित हो रही थीं।

यूक्रेन में जारी संघर्ष भी नागरिकों की सुरक्षा के लिए गंभीर ख़तरा बना हुआ है। संयुक्त राष्ट्र के मानवाधिकार निगरानी मिशन की 16 अक्टूबर 2026 की रिपोर्ट के अनुसार, सितंबर 2026 में यूक्रेन में कम-से-कम 328 नागरिक मारे गए और 2,105 घायल हुए। जनवरी से सितंबर 2026 के बीच नागरिकों के हताहत होने की संख्या 2025 की इसी अवधि की तुलना में 59 प्रतिशत अधिक रही। मिसाइलों और ड्रोनों के हमलों ने शहरों तथा अग्रिम मोर्चे से दूर स्थित इलाक़ों में भी आम नागरिकों के जीवन को प्रभावित किया। यह स्थिति स्पष्ट करती है कि आधुनिक युद्ध में नागरिक आबादी को होने वाला नुक़सान केवल युद्धक्षेत्र तक सीमित नहीं रहता।

सूडान का संकट बताता है कि युद्ध किस तरह पूरे समाज की बुनियादी व्यवस्था को कमज़ोर कर देता है। यूनिसेफ़ की अगस्त 2026 में प्रकाशित मध्यावधि रिपोर्ट के अनुसार, वहाँ 3.37 करोड़ लोगों को मानवीय सहायता की आवश्यकता थी और लगभग 91.4 लाख लोग देश के भीतर ही विस्थापित हो चुके थे। खाद्य असुरक्षा, बीमारियों और स्वास्थ्य तथा शिक्षा सेवाओं में व्यवधान ने बच्चों और परिवारों की कठिनाइयाँ बढ़ा दी थीं।

इन उदाहरणों को अलग-अलग क्षेत्रीय संकट मानकर नज़रअंदाज़ नहीं किया जा सकता। संयुक्त राष्ट्र शरणार्थी एजेंसी (UNHCR) की जून 2026 में प्रकाशित वैश्विक रिपोर्ट के अनुसार, 2025 के अंत तक प्रत्येक 70 में से एक व्यक्ति जबरन विस्थापन की स्थिति में था। इसका अर्थ है कि दुनिया की आबादी का लगभग 1.4 प्रतिशत हिस्सा संघर्ष और अन्य परिस्थितियों के कारण अपने घर से बेदख़ल होने को मजबूर था।

अंतरराष्ट्रीय मानवीय क़ानून सशस्त्र संघर्ष के दौरान नागरिकों और लड़ाकों के बीच अंतर करने, नागरिक आबादी को जान-बूझकर निशाना बनाने से रोकने तथा मानवीय सहायता की सुरक्षित पहुँच सुनिश्चित करने का दायित्व

निर्धारित करता है। अस्पतालों, विद्यालयों और राहतकर्मियों की सुरक्षा भी इसी व्यवस्था का महत्त्वपूर्ण हिस्सा है। युद्धविराम, शांति वार्ता और राहत सहायता आवश्यक हैं, लेकिन इनके साथ उल्लंघनों की स्वतंत्र जाँच तथा दोषियों की जवाबदेही भी सुनिश्चित होनी चाहिए। मानवाधिकारों की वास्तविक परीक्षा इसी बात में है कि दुनिया युद्ध की स्थिति में भी मनुष्य के जीवन और सम्मान की रक्षा के अपने दायित्व को कितना निभाती है।

नस्लीय, धार्मिक और सामाजिक भेदभाव

मानवाधिकारों का उल्लंघन केवल युद्धक्षेत्रों में नहीं होता। यह रोज़मर्रा के जीवन में भी दिखाई देता है, जब किसी व्यक्ति को उसकी पहचान के आधार पर कमतर समझा जाता है या उसके अवसर सीमित कर दिए जाते हैं।

नस्लीय भेदभाव, धार्मिक असहिष्णुता, जातिगत उत्पीड़न, महिलाओं के विरुद्ध हिंसा और प्रवासियों के साथ अमानवीय व्यवहार विभिन्न समाजों में अलग-अलग रूपों में मौजूद हैं। कहीं धार्मिक अल्पसंख्यकों की सुरक्षा चिंता का विषय है, कहीं प्रवासियों को सार्वजनिक सुविधाओं और सम्मानजनक व्यवहार से वंचित किया जाता है।

भेदभाव का एक गंभीर रूप तब सामने आता है, जब किसी पूरे समुदाय को कुछ व्यक्तियों के कथित अपराधों के लिए ज़िम्मेदार मान लिया जाता है। सामूहिक दोषारोपण न्याय के बुनियादी सिद्धांत के विरुद्ध है। अपराध की ज़िम्मेदारी व्यक्ति के आचरण और प्रमाणों के आधार पर तय होनी चाहिए, न कि उसकी धार्मिक, जातीय या सामाजिक पहचान के आधार पर।

इसी तरह किसी समुदाय के वास्तविक प्रश्नों को नज़रअंदाज़ करना या उसके विरुद्ध होने वाले अन्याय को सामान्य मान लेना भी अस्वीकार्य है। किसी भी सभ्य समाज की पहचान इस बात से होती है कि वह अपने बहुसंख्यक समुदाय के अधिकारों के साथ-साथ अल्पसंख्यकों की सुरक्षा और गरिमा की कितनी प्रभावी रक्षा करता है।

हिरासत में यातना और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर प्रतिबंध

किसी व्यक्ति को गिरफ़्तार कर लेना अपने आप में उसे अपराधी सिद्ध नहीं करता। न्याय व्यवस्था का मूल सिद्धांत है कि आरोपित व्यक्ति को निष्पक्ष सुनवाई और अपना पक्ष रखने का अवसर मिले। इसके बावजूद दुनिया के विभिन्न हिस्सों में मनमानी हिरासत, हिरासत में यातना, जबरन ग़ायब कर दिए जाने और निष्पक्ष सुनवाई से वंचित किए जाने की शिकायतें सामने आती रहती हैं।

आतंकवाद और राष्ट्रीय सुरक्षा जैसे गंभीर प्रश्नों से निपटने के लिए राज्य को क़ानूनी अधिकार प्राप्त हैं, लेकिन इन अधिकारों का प्रयोग भी क़ानून के दायरे में होना चाहिए। सुरक्षा का तर्क किसी व्यक्ति को यातना देने, बिना उचित प्रक्रिया के अनिश्चितकाल तक हिरासत में रखने या उसके बुनियादी अधिकारों को मनमाने ढंग से समाप्त करने का औचित्य नहीं बन सकता।

अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर प्रतिबंध भी इसी संदर्भ में महत्त्वपूर्ण है। पत्रकार, सामाजिक कार्यकर्ता, मानवाधिकार रक्षक और सरकार की आलोचना करने वाले नागरिक लोकतांत्रिक व्यवस्था में जवाबदेही सुनिश्चित करने की भूमिका निभाते हैं। यदि असहमति को अपराध मान लिया जाए, तो सत्ता के दुरुपयोग को उजागर करने के अवसर सीमित हो जाते हैं। इसलिए ज़रूरत ऐसे संतुलित क़ानूनी ढाँचे की है, जिसमें प्रतिबंध स्पष्ट क़ानून पर आधारित हों, आवश्यक और आनुपातिक हों तथा उनकी स्वतंत्र समीक्षा संभव हो।

मानवाधिकारों के नाम पर दोहरे मानदंड

मानवाधिकारों की सार्वभौमिकता का सबसे बड़ा परीक्षण तब होता है, जब किसी उल्लंघन में राजनीतिक रूप से प्रभावशाली देश या उसका सहयोगी शामिल हो। यदि एक देश में नागरिकों पर हमले की निंदा की जाए, लेकिन दूसरे देश में वैसी ही घटनाओं पर चुप्पी साध ली जाए, तो यह सवाल उठना स्वाभाविक है कि क्या मानवाधिकारों के सिद्धांत सभी के लिए समान हैं।

एमनेस्टी इंटरनेशनल की 2025 की वार्षिक रिपोर्ट ने सशस्त्र संघर्षों में उल्लंघनों, असहमति के दमन, भेदभाव और शक्तिशाली देशों द्वारा अंतरराष्ट्रीय नियम-आधारित व्यवस्था को कमज़ोर करने जैसी प्रवृत्तियों की ओर ध्यान दिलाया। रिपोर्ट में 2024 के दौरान 150 देशों में मानवाधिकारों की स्थिति का आकलन किया गया।

दोहरे मानदंडों की समस्या केवल किसी एक राजनीतिक गुट तक सीमित नहीं है। विभिन्न देश अपने रणनीतिक, आर्थिक और सैन्य हितों के अनुसार मानवाधिकारों पर ज़ोर देते या उनसे ध्यान हटाते दिखाई देते हैं। कहीं किसी सरकार

की आलोचना की जाती है, तो कहीं उसी प्रकार के दमन को सुरक्षा या स्थिरता के नाम पर उचित ठहराने की कोशिश होती है।

हालाँकि, हर मामले में समान निष्कर्ष निकालना भी उचित नहीं होगा। घटनाओं की परिस्थितियाँ, उपलब्ध प्रमाण और लागू क़ानून अलग-अलग हो सकते हैं। इसलिए निष्पक्षता का अर्थ यह नहीं कि हर घटना को एक जैसा मान लिया जाए, बल्कि यह है कि समान मानकों से जाँच की जाए, विश्वसनीय प्रमाणों को महत्त्व दिया जाए और राजनीतिक पसंद-नापसंद को न्याय का आधार न बनने दिया जाए।

मानवाधिकार किसी देश की छवि ख़राब करने या किसी दूसरे देश को नैतिक श्रेष्ठता प्रदान करने का औज़ार नहीं होने चाहिए। उनका उद्देश्य पीड़ित की रक्षा, उल्लंघन की रोकथाम और दोषियों की जवाबदेही सुनिश्चित करना है। यदि मानवाधिकारों की भाषा केवल विरोधियों पर दबाव डालने के लिए इस्तेमाल होती है, तो उसका नैतिक आधार कमज़ोर पड़ जाता है। अंतरराष्ट्रीय संस्थाओं की विश्वसनीयता भी तभी बढ़ेगी, जब उनके सिद्धांतों को शक्तिशाली और कमज़ोर देशों पर समान रूप से लागू करने की राजनीतिक इच्छाशक्ति दिखाई दे।

मानवाधिकारों की रक्षा के लिए आवश्यक उपाय

मानवाधिकारों की स्थिति में सुधार के लिए घोषणाओं और निंदा प्रस्तावों से आगे बढ़कर ठोस क़दम उठाने होंगे। सबसे पहले, प्रत्येक देश में क़ानून का निष्पक्ष पालन सुनिश्चित करना आवश्यक है। पुलिस और जाँच एजेंसियों को जवाबदेह बनाया जाए, हिरासत में यातना के मामलों की स्वतंत्र जाँच हो और पीड़ितों को प्रभावी उपचार तथा मुआवज़ा उपलब्ध कराया जाए।

दूसरे, न्यायपालिका की स्वतंत्रता और आम नागरिक की न्याय तक पहुँच को मज़बूत किया जाना चाहिए। मुक़दमों में अनावश्यक देरी, महँगी क़ानूनी प्रक्रिया और ग़रीबी के कारण न्याय से वंचित रह जाना समानता के सिद्धांत को कमज़ोर करता है। निःशुल्क क़ानूनी सहायता और प्रभावी शिकायत-निवारण व्यवस्था इस दिशा में उपयोगी क़दम हैं।

तीसरे, सरकारों को अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, शांतिपूर्ण विरोध और स्वतंत्र पत्रकारिता की रक्षा करनी चाहिए। मानवाधिकारों के उल्लंघन की जाँच करने वाले पत्रकारों, वकीलों और सामाजिक कार्यकर्ताओं को सुरक्षा मिलनी चाहिए। साथ ही, डिजिटल निगरानी और निजी सूचनाओं के इस्तेमाल पर स्पष्ट नियम होने चाहिए।

चौथे, शिक्षा और नागरिक जागरूकता को प्राथमिकता दी जानी चाहिए। मानवाधिकारों का ज्ञान केवल किताबों तक सीमित न रहे, बल्कि समाज में यह समझ विकसित हो कि दूसरे व्यक्ति की गरिमा और स्वतंत्रता का सम्मान करना भी नागरिक ज़िम्मेदारी है। नस्लीय, धार्मिक, जातिगत और लैंगिक भेदभाव के विरुद्ध सामाजिक स्तर पर लगातार प्रयास आवश्यक हैं।

अंतरराष्ट्रीय संस्थाओं को भी अधिक प्रभावी और जवाबदेह बनाने की आवश्यकता है। गंभीर उल्लंघनों के प्रमाणों का निष्पक्ष दस्तावेज़ीकरण, स्वतंत्र जाँच, पीड़ितों तक मानवीय सहायता की पहुँच और अंतरराष्ट्रीय क़ानून के अनुसार जवाबदेही सुनिश्चित करना प्राथमिकताएँ होनी चाहिए। सुरक्षा परिषद में सुधार और वीटो के दुरुपयोग को सीमित करने के प्रयास भी इस दिशा में महत्त्वपूर्ण हैं।

आगे की राह

मानवाधिकारों का प्रश्न अंततः मनुष्य की गरिमा का प्रश्न है। किसी व्यक्ति को सम्मान के साथ जीने, अपनी बात कहने, न्याय पाने और भयमुक्त जीवन बिताने का अधिकार इसलिए नहीं मिलना चाहिए कि वह किसी शक्तिशाली देश का नागरिक है, किसी बहुसंख्यक समुदाय से संबंधित है या किसी प्रभावशाली वर्ग में पैदा हुआ है। ये अधिकार मनुष्य होने के नाते सभी को प्राप्त हैं।

आज दुनिया के सामने चुनौती मानवाधिकारों के सिद्धांतों की कमी नहीं, बल्कि उनके निष्पक्ष क्रियान्वयन की है। जब राजनीतिक हित न्याय से ऊपर रखे जाते हैं, जब सुरक्षा के नाम पर स्वतंत्रता को कुचला जाता है और जब पीड़ित की पहचान देखकर उसके दर्द का मूल्य तय किया जाता है, तब मानवाधिकारों की सार्वभौमिकता अर्थहीन होने लगती है।

किसी भी सरकार, संस्था या अंतरराष्ट्रीय व्यवस्था की विश्वसनीयता का मूल्यांकन इस आधार पर होना चाहिए कि वह शक्तिशाली लोगों के साथ-साथ कमज़ोरों के अधिकारों की रक्षा कितनी ईमानदारी से करती है। मानव सभ्यता की पहचान इस बात से नहीं होती कि उसने कितने अधिकार घोषित किए हैं, बल्कि इससे होती है कि उसने उन अधिकारों से वंचित व्यक्ति को कितना न्याय दिया है। ■■

विशेष आयोजन

इस्लाम : मानवाधिकारों का ध्वजावाहक

❖एम. एस. शम्सी

मानवाधिकार शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व की बुनियाद हैं। ये ऐसे अधिकार नहीं हैं, जिन्हें शासक अपने नागरिक को, कोई प्रतिष्ठित व्यक्ति किसी सामान्य व्यक्ति को या पूँजीपति वर्ग किसी वंचित वर्ग को दान या कृपा के रूप में देता है। बल्कि ये वे अधिकार हैं, जिन्हें ईश्वर ने प्रत्येक मनुष्य को जन्म से ही प्रदान किया है। ये अधिकार हर इंसान में जन्म से ही निहित हैं। जाति, वर्ग, रंग, धर्म, सामाजिक स्थिति या राष्ट्रीयता के आधार पर इनमें कोई भेदभाव नहीं किया जा सकता।

मानवाधिकार एक शांतिपूर्ण, न्यायपूर्ण और समानतापूर्ण समाज के निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। ये लोगों को भेदभाव, शोषण, अन्याय और हिंसा से बचाते हैं। किसी व्यक्ति को उसके जन्मसिद्ध अधिकार से वंचित करना अत्याचार और ज़ुल्म की पराकाष्ठा है।

मानवाधिकार एक व्यापक अवधारणा है। इसके अंतर्गत कुछ प्रमुख अधिकार आते हैं—जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता का अधिकार, समानता का अधिकार, विचार और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, धार्मिक स्वतंत्रता, शिक्षा का अधिकार, रोज़गार और आजीविका कमाने का अधिकार, ग़ुलामी से मुक्ति का अधिकार तथा न्याय और निष्पक्ष सुनवाई का अधिकार आदि।

इस्लाम से पहले मानवाधिकारों की स्थिति

इस्लाम के आगमन से पहले मानवाधिकारों की स्थिति बेहद दयनीय थी। उस समय अरब समाज क़बीलाई विभाजन, धार्मिक विविधता, सामाजिक असमानता, आर्थिक शोषण और राजनीतिक बिखराव से जूझ रहा था। महिलाओं, ग़ुलामों, अनाथों और समाज के कमज़ोर वर्गों को जन्म से ही अन्याय और अत्याचार का सामना करना पड़ता था। हालाँकि, इस्लाम-पूर्व अरब की स्थिति का सामान्यीकरण करना उचित नहीं होगा, क्योंकि हर अरब क़बीले और क्षेत्र के हालात एक जैसे नहीं थे। शहरी केंद्रों, रेगिस्तानी इलाक़ों और स्थापित राजतंत्रों में सामाजिक परिस्थितियाँ काफ़ी अलग-अलग थीं।

उस समय के तथाकथित विकसित देशों की स्थिति भी इससे बेहतर नहीं थी। सातवीं शताब्दी से पहले अरब प्रायद्वीप के पड़ोसी दो प्रमुख शक्तिशाली साम्राज्य थे—रोमन साम्राज्य का पूर्वी भाग, जिसे बाइज़ेंटाइन साम्राज्य कहा जाता है, और सासानी साम्राज्य। दोनों सभ्यताओं के पास विकसित क़ानूनी व्यवस्थाएँ और मज़बूत प्रशासनिक ढाँचे थे, लेकिन वहाँ मानवाधिकार सभी के लिए समान रूप से उपलब्ध नहीं थे। क़ानूनी संरक्षण, स्वतंत्रता और सामाजिक महत्त्व का निर्धारण शासक वर्ग के धर्म, सामाजिक हैसियत, जाति, वर्ग और क़ानूनी स्थिति के आधार पर होता था।

बाइज़ेंटाइन साम्राज्य में धार्मिक असहिष्णुता का माहौल था और धार्मिक विविधता को दबाया जाता था। वहाँ ग़ुलामी की प्रथा क़ानूनी रूप से मान्य थी और ग़ुलामों को संपत्ति की तरह समझा जाता था। न्याय व्यवस्था में भी भेदभाव था। प्रतिष्ठित और उच्च वर्ग के लोगों तथा निचले वर्ग के लोगों के लिए अलग-अलग दंड निर्धारित थे।

दूसरी ओर, सासानी साम्राज्य कठोर सामाजिक जाति-व्यवस्था से ग्रस्त था, जो व्यक्ति की स्वतंत्रता को सीमित करती थी। वहाँ धार्मिक अल्पसंख्यकों के साथ क़ानूनी भेदभाव किया जाता था और ज़रथुश्त धर्म को विशेष संरक्षण प्राप्त था। महिलाओं की स्थिति भी दयनीय थी। क़ानून की नज़र में उन्हें नाबालिग़ों के समान माना जाता था और पति को यह क़ानूनी अधिकार प्राप्त था कि वह अपनी पत्नी को किसी दूसरे पुरुष के हवाले कर सकता है।

ऐतिहासिक दृष्टि से देखें तो मानवाधिकारों के क्षेत्र में सुधार की दिशा में पहला क़दम वर्ष1215 में मैग्ना कार्टा के रूप में उठाया गया। यह इंग्लैंड के राजा जॉन और विद्रोही सामंतों के बीच शांति स्थापित करने के उद्देश्य से जारी किया गया एक शाही दस्तावेज़ था। इसमें कुछ सुधारात्मक प्रावधान किए गए थे, जैसे किसी व्यक्ति को ग़ैर-क़ानूनी रूप से क़ैद करने से सुरक्षा और न्याय तक पहुँच का अधिकार। हालाँकि, इसका प्रभाव एक सीमित क्षेत्र तक ही रहा, इसलिए यह व्यापक स्तर पर प्रभावी नहीं हो सका।

इस दिशा में अगला महत्त्वपूर्ण कार्य फ्रांसीसी क्रांति के

विचारक रूसो की वर्ष 1762 में प्रकाशित पुस्तक द सोशल कॉन्ट्रैक्ट (सामाजिक अनुबंध) थी। इस पुस्तक में व्यक्ति की स्वतंत्रता और राजनीतिक राज्य की सत्ता के बीच संतुलन के प्रश्न पर विचार किया गया। इसमें राज्य के बजाय जनता की सर्वोच्चता का सिद्धांत प्रस्तुत किया गया और सभी के लिए क़ानून के समान संरक्षण पर बल दिया गया।

हालाँकि, द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद 10 दिसंबर 1948 को संयुक्त राष्ट्र ने मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा (Universal Declaration of Human Rights—UDHR) को स्वीकार किया। युद्ध के दौरान लाखों लोगों को हिंसा, भेदभाव और अन्याय का सामना करना पड़ा था। मानव गरिमा की रक्षा करने और भविष्य में ऐसी त्रासदियों की पुनरावृत्ति रोकने के उद्देश्य से यह घोषणा की गई थी। मानवाधिकारों के इतिहास में इसे एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि माना जाता है। इसके माध्यम से पहली बार ऐसे बुनियादी मानवाधिकार निर्धारित किए गए, जिन्हें पूरी दुनिया में संरक्षण दिया जाना था।

मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा को व्यापक रूप से उन सत्तर से अधिक मानवाधिकार संधियों की प्रेरणा और आधार माना जाता है, जिन्हें बाद में अपनाया गया और जो आज वैश्विक तथा क्षेत्रीय स्तर पर लागू हैं।

इस घोषणा के सभी 30 अनुच्छेदों में मुख्य रूप से तीन बातों पर ज़ोर दिया गया है—व्यक्तिगत स्वतंत्रता, सबके लिए न्याय और समानता। इसमें आर्थिक, सांस्कृतिक और सामाजिक अधिकारों के साथ निजता, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता और धार्मिक स्वतंत्रता जैसे अधिकार भी शामिल हैं।

इसमें कोई संदेह नहीं कि यह घोषणा अपने आप में क्रांतिकारी थी, लेकिन इसके साथ कई गंभीर कमियाँ भी जुड़ी थीं। व्यावहारिक रूप से यह एक ऐसा दस्तावेज़ बनकर रह गई है, जिसके पास अपने प्रावधानों को लागू कराने की कोई मज़बूत व्यवस्था नहीं है। संयुक्त राष्ट्र केवल प्रस्ताव पारित कर सकता है, लेकिन उन्हें लागू कराने की प्रभावी शक्ति उसके पास नहीं है।

हाल के वर्षों में संयुक्त राष्ट्र की स्थिति ऐसी दिखाई देती है, मानो वह महाशक्तियों के हाथों का मोहरा बनकर रह गया हो। फ़ैसले वही शक्तियाँ करती हैं, जिनके हाथ में वास्तविक सत्ता है। अल्जीरिया, कोसोवो, बोस्निया और पिछले तीन वर्षों से ग़ज़ा में जारी जनसंहार इसके स्पष्ट उदाहरण हैं। इन घटनाओं में तमाम मानवीय मूल्यों और मानवता के सिद्धांतों का खुला उल्लंघन हुआ है। इसके बावजूद संयुक्त राष्ट्र मूकदर्शक बना रहा है और कई मामलों में उसकी भूमिका महाशक्तियों को मौन समर्थन देने जैसी दिखाई देती है।

मानवाधिकारों के प्रति इस्लाम का दृष्टिकोण

उपरोक्त ऐतिहासिक विवरण से स्पष्ट होता है कि मानवाधिकारों की अवधारणा पर मानव समाज ने तेरहवीं शताब्दी के आरंभ में, मैग्ना कार्टा के माध्यम से विचार करना शुरू किया। यह दस्तावेज़ ब्रिटेन के राजा और विद्रोही सामंतों के बीच शांति स्थापित करने के उद्देश्य से तैयार किया गया था। लेकिन मानवाधिकारों की अवधारणा को सबसे पहले व्यवस्थित रूप देने और उसके विस्तृत सिद्धांत प्रस्तुत करने का श्रेय इस्लाम को जाता है। सातवीं शताब्दी में, जब दुनिया के किसी भी हिस्से में मानवाधिकारों की ऐसी कल्पना भी नहीं की जा सकती थी, उस समय इस्लाम ने मानवाधिकारों, मनुष्य के सम्मान और उसकी गरिमा की रक्षा के लिए विस्तृत नियम और सिद्धांत प्रस्तुत कर दिए थे।

हालाँकि, मानवाधिकारों के प्रति इस्लाम का दृष्टिकोण प्रचलित सामान्य अवधारणा से कुछ अलग है। इस्लाम में मानवाधिकारों की अवधारणा को समझने के लिए सबसे पहले मनुष्य के बारे में इस्लाम की दृष्टि को समझना आवश्यक है। मानवाधिकारों का विचार इसी दृष्टिकोण का स्वाभाविक परिणाम है।

मनुष्य के बारे में इस्लाम की धारणा इस्लामी विश्वदृष्टि पर आधारित है। इसके अनुसार, इस पूरी कायनात का रचयिता और स्वामी केवल ईश्वर है। इसका अर्थ यह है कि इस सृष्टि की हर चीज़ ईश्वर की है और उसका कोई साझीदार नहीं है। मनुष्य धरती पर ईश्वर का प्रतिनिधि है और उसका दायित्व है कि वह अपने स्वामी के आदेशों का पालन करे और उन्हें लागू करे।

इसके अलावा, क़ुरआन स्पष्ट करता है कि प्रकृति के सभी संसाधन ईश्वर ने पूरी मानवजाति के उपयोग के लिए उपलब्ध कराए हैं। किसी को भी यह अधिकार नहीं है कि वह किसी दूसरे व्यक्ति को इन प्राकृतिक संसाधनों तक पहुँचने से रोके। इसलिए अधिकारों और कर्तव्यों को निर्धारित करने का वैध अधिकार केवल ईश्वर को है। मनुष्य द्वारा बनाए गए क़ानूनों को इस पवित्र स्थान पर नहीं रखा जा सकता। उन्हें हमेशा ईश्वरीय आदेशों के अधीन रहना चाहिए।

यह सिद्धांत किसी भी व्यक्ति या संस्था को असीमित

अधिकार प्राप्त होने की संभावना समाप्त कर देता है। ईश्वर ने मानवाधिकारों और कर्तव्यों को निर्धारित करने की विधायी शक्ति किसी अन्य को नहीं सौंपी है। हालाँकि, ईश्वरीय विधान की सीमाओं के भीतर पूरक क़ानून बनाने की अनुमति है।

इस प्रकार मानवाधिकार भी ईश्वरीय विधान से ही प्राप्त होते हैं और हर परिस्थिति में उनका सम्मान किया जाना आवश्यक है। इन अधिकारों का उल्लंघन करने वाले ईश्वर के प्रकोप के भागी होंगे और कड़ी सज़ा के पात्र होंगे।

मानवाधिकारों से संबंधित इस्लाम के कुछ महत्त्वपूर्ण और बुनियादी प्रावधानों का संक्षिप्त विवरण नीचे दिया जा रहा है।

जीवन का अधिकार

इस्लाम में सबसे पहला और सबसे बुनियादी अधिकार जीवन का अधिकार है। जीवन केवल ईश्वर ने दिया है और इसे लेने का अधिकार भी उसी को है। दंड के रूप में मृत्युदंड का प्रावधान भी अल्लाह की ओर से निर्धारित है, क्योंकि कुछ अपराधों के लिए मृत्युदंड का विधान उसी ने किया है।

पवित्र क़ुरआन में कहा गया है, "जिस प्राण को ईश्वर ने सम्मान और पवित्रता प्रदान की है, उसे नाहक़ क़त्ल न करो। हाँ, क़ानूनी प्रक्रिया के तहत किसी अपराध के लिए दंडस्वरूप ऐसा किया जा सकता है।" (क़ुरआन, 6:151)

यह आदेश सभी मनुष्यों पर समान रूप से लागू होता है।

क़ुरआन इस बात को और स्पष्ट करते हुए कहता है, "जिसने किसी एक इंसान की हत्या की, जबकि उसने किसी की हत्या न की हो और न धरती में उपद्रव फैलाया हो, तो मानो उसने पूरी मानवजाति की हत्या कर दी। और जिसने किसी एक इंसान की जान बचाई, तो मानो उसने पूरी मानवजाति की जान बचा ली।" (क़ुरआन, 5:32)

समानता का अधिकार

इस्लाम पूरी मानवजाति की पूर्ण समानता का सिद्धांत प्रस्तुत करता है। यह जाति, रंग, नस्ल, लिंग, भाषा और राष्ट्रीयता के आधार पर मनुष्यों के बीच किए जाने वाले भेदभाव की जड़ पर प्रहार करता है।

ईश्वर ने क़ुरआन में कहा है, "ऐ लोगो! हमने तुम सबको एक पुरुष और एक स्त्री से पैदा किया और तुम्हें विभिन्न क़ौमों और क़बीलों में बाँट दिया, ताकि तुम एक-दूसरे को पहचान सको, न कि एक-दूसरे को नीचा समझो। निश्चय ही ईश्वर की दृष्टि में तुममें सबसे अधिक सम्मानित वह है, जो सबसे अधिक परहेज़गार है।" (क़ुरआन, 49:13)

इसका अर्थ यह है कि इंसानों को विभिन्न क़ौमों, नस्लों, समूहों और क़बीलों में बाँटने का उद्देश्य केवल उनकी अलग-अलग पहचान स्थापित करना है, ताकि एक नस्ल या क़बीले के लोग दूसरे नस्ल या क़बीले के लोगों से मिल सकें, एक-दूसरे को जान सकें और आपस में सहयोग कर सकें। इस विभाजन का उद्देश्य न तो किसी क़ौम को दूसरी क़ौम पर अपनी श्रेष्ठता जताने का अवसर देना है और न ही किसी को दूसरों के प्रति तिरस्कार का भाव रखने की अनुमति देना है।

पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल.) ने अपनी एक हदीस में इसी सिद्धांत को स्पष्ट करते हुए कहा है, "किसी अरब को किसी ग़ैर-अरब पर और किसी ग़ैर-अरब को किसी अरब पर कोई श्रेष्ठता प्राप्त नहीं है। इसी तरह किसी गोरे को किसी काले पर और किसी काले को किसी गोरे पर कोई श्रेष्ठता नहीं है। तुम सब आदम की संतान हो और आदम को मिट्टी से पैदा किया गया था।" (हदीस : बैहक़ी)

न्याय का अधिकार

न्याय इस्लाम की शिक्षाओं का आधार है। हर इंसान को समान और न्यायपूर्ण व्यवहार पाने का अधिकार है। किसी भी परिस्थिति में किसी के साथ अन्याय या अनुचित व्यवहार नहीं किया जा सकता।

इस संबंध में क़ुरआन का स्पष्ट निर्देश है, "निस्संदेह ईश्वर न्याय करने, भलाई करने और रिश्तेदारों को उनका हक़ देने का आदेश देता है तथा अश्लीलता, बुरे कामों और ज़्यादती से रोकता है। वह तुम्हें नसीहत करता है, ताकि तुम सीख लो।" (क़ुरआन, 16:90)

न्याय तभी वास्तविक न्याय हो सकता है, जब वह किसी भय, पक्षपात या भेदभाव से पूरी तरह मुक्त हो। उसे सभी पर समान रूप से और बिना किसी अपवाद के लागू किया जाना चाहिए।

क़ुरआन ईमान वालों को निर्देश देता है, "ऐ ईमान वालो! न्याय पर मज़बूती से डटे रहो और ईश्वर के लिए गवाही दो, चाहे यह गवाही तुम्हारे अपने विरुद्ध हो या तुम्हारे माता-पिता और रिश्तेदारों के विरुद्ध।" (क़ुरआन, 4:135)

क़ुरआन यह भी आदेश देता है कि अपने कट्टर शत्रु के साथ भी न्याय किया जाए। पवित्र क़ुरआन में कहा गया है, "ऐ ईमान वालो! ईश्वर के लिए मज़बूती से खड़े हो जाओ और न्याय के साथ गवाही दो। किसी क़ौम की दुश्मनी तुम्हें न्याय से न रोक दे। न्याय करो, क्योंकि यही परहेज़गारी के अधिक

निकट है।" (क़ुरआन, 5:8)

धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार

इस्लाम के बारे में लंबे समय से यह ग़लत प्रचार किया जाता रहा है कि उसका प्रसार तलवार के ज़ोर पर हुआ। यह प्रचार क़ुरआन की बुनियादी शिक्षा के बिल्कुल विपरीत है।

पवित्र क़ुरआन स्पष्ट घोषणा करता है, "धर्म के मामले में कोई ज़बरदस्ती नहीं है। सही बात ग़लत बात से अलग होकर स्पष्ट हो चुकी है।" (क़ुरआन, 2:256)

क़ुरआन आगे कहता है, "कह दो कि यह तुम्हारे रब की ओर से सत्य है। अब जो चाहे इसे माने और जो चाहे इसका इनकार करे।" (क़ुरआन, 18:29)

पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल.) लोगों तक इस्लाम का संदेश पहुँचाने के लिए पूरी लगन और उत्साह के साथ प्रयास करते थे। उनकी इच्छा थी कि सभी लोग इस्लाम स्वीकार कर लें, क्योंकि यह ईश्वर की ओर से उतारा गया धर्म है। लेकिन ईश्वर ने स्पष्ट कर दिया कि मनुष्य को अपनी इच्छा से चुनाव करने की स्वतंत्रता दी गई है और इसीलिए सभी लोग इस्लाम स्वीकार नहीं करेंगे।

लोगों को किसी विशेष मार्ग को अपनाने के लिए मजबूर करना और उनसे चुनाव की स्वतंत्रता छीन लेना ईश्वर की मंशा के विरुद्ध है। क़ुरआन इस बात को स्पष्ट करते हुए कहता है, "यदि तुम्हारे रब की इच्छा होती तो धरती पर मौजूद सभी लोग ईमान ले आते। तो क्या तुम लोगों को मजबूर करोगे कि वे ईमान ले आएँ?" (10:99)

इस्लाम के प्रचार-प्रसार के लिए सत्य का संदेश लोगों तक पहुँचाने, उन्हें ईमानदारी के साथ अच्छी सलाह देने और फिर उन्हें अपना निर्णय स्वयं लेने के लिए स्वतंत्र छोड़ने पर ज़ोर दिया गया है। अपने निर्णय और उसके परिणामों के लिए प्रत्येक व्यक्ति स्वयं ज़िम्मेदार है।

आजीविका कमाने का अधिकार

आजीविका जीवन की बुनियादी आवश्यकता है। इस्लाम प्रत्येक व्यक्ति को आर्थिक गतिविधियों में भाग लेकर अपनी रोज़ी-रोटी कमाने के बुनियादी अधिकार को मान्यता देता है। इसमें भोजन, कपड़ा, आवास और आवागमन जैसी ज़रूरतें शामिल हैं।

इस्लाम में वैध तरीक़े से रोज़ी कमाने के प्रयास को पुण्य का काम माना गया है। ईश्वर क़ुरआन में कहता है, "वही है जिसने तुम्हारे लिए धरती को रहने योग्य बनाया। इसलिए उसके रास्तों में चलो-फिरो और उसके दिए हुए रिज़्क़ में से खाओ। और उसी की ओर तुम्हें लौटकर जाना है।"

(क़ुरआन, 67:15)

इस उद्देश्य से ईश्वर ने अनेक प्राकृतिक संसाधन पैदा किए हैं और प्रत्येक इंसान को उन तक समान रूप से पहुँचने का अधिकार दिया है।

पवित्र क़ुरआन में कहा गया है, "ईश्वर ही है जिसने आकाशों और धरती को पैदा किया और आकाश से पानी बरसाया, फिर उसके माध्यम से तुम्हारे खाने के लिए तरह-तरह के फल पैदा किए। उसी ने नावों को तुम्हारे अधीन किया, ताकि तुम उसके आदेश से समुद्र में चल सको...और उसने तुम्हें वह सब कुछ दिया, जो तुमने उससे माँगा। यदि तुम ईश्वर की नेमतों को गिनना चाहो तो उन्हें गिन नहीं सकते।"

(क़ुरआन, 14:32-34)

उपासना स्थलों की सुरक्षा का अधिकार

इस्लाम प्रत्येक व्यक्ति को अपना उपासना स्थल बनाने का अधिकार देता है। किसी को भी दूसरों के उपासना स्थलों पर हमला करने या उन्हें ध्वस्त करने का अधिकार नहीं है।

इतना ही नहीं, यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि ईश्वर स्वयं उपासना स्थलों की सुरक्षा का प्रबंध करता है। पवित्र क़ुरआन में स्पष्ट रूप से कहा गया है, "यदि ईश्वर कुछ लोगों के ज़रिये दूसरे लोगों की ज़्यादती को न रोकता रहता, तो मठ, गिरजे, यहूदियों के उपासना स्थल और मस्जिदें, जहाँ ईश्वर का नाम बहुतायत से लिया जाता है, सब ध्वस्त कर दिए जाते।" (क़ुरआन, 22:40)

अन्य अधिकार

उपरोक्त अधिकारों के अतिरिक्त भी इस्लाम में अनेक अन्य अधिकारों का उल्लेख मिलता है। इनमें विचार, अभिव्यक्ति और कर्म की स्वतंत्रता, आत्मरक्षा का अधिकार, महिलाओं, विधवाओं, अनाथों, कमज़ोर और दिव्यांग व्यक्तियों के अधिकार शामिल हैं। क़ुरआन में इन अधिकारों का एक से अधिक स्थानों पर बिल्कुल स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया है और पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल.) ने अपनी शिक्षाओं के माध्यम से इनकी और विस्तार से व्याख्या की है।

वास्तव में, मानवाधिकारों के क्षेत्र में इस्लाम अग्रणी रहा है। लगभग 1400 वर्ष पहले इस्लाम ने मानवाधिकारों का इतने विस्तार और सूक्ष्मता के साथ उल्लेख किया कि आज तक दुनिया का कोई भी मानवाधिकार घोषणापत्र इस मामले में उसकी बराबरी नहीं कर सकता। ■■

कविता

मैं आस्थावान हूँ

❖डॉ. मुहम्मद अहमद

अपना जीवन जीता हूँ
परीक्षा के पल सीता हूँ
निखरना चाहता हूँ
हुक्म पर चलकर रब के,
क्योंकि,
मैं मुसलमान हूँ
मैं आस्थावान हूँ।
पथिक जो थे चले गए
जो हैं कल जाएंगे
आना-जाना
आवागमन नहीं
पर ठहरना भी नियत नहीं
जाना चाहता हूँ—
अपनी दूसरी भूमिका में
आना चाहता हूँ
शाश्वत जीवन जीना चाहता हूँ
क्योंकि,
मैं आस्थावान हूँ
मैं मुसलमान हूँ।

कविता

दूसरा बनवास

❖कैफ़ी आज़मी

राम बनवास से जब लौटकर घर में आये
याद जंगल बहुत आया जो नगर में आये
रक़्से-दीवानगी आंगन में जो देखा होगा
छह दिसम्बर को श्रीराम ने सोचा होगा
इतने दीवाने कहां से मेरे घर में आये

धर्म क्या उनका है, क्या ज़ात है ये जानता कौन
घर ना जलता तो उन्हें रात में पहचानता कौन
घर जलाने को मेरा, लोग जो घर में आये

शाकाहारी हैं मेरे दोस्त, तुम्हारे ख़ंजर
तुमने बाबर की तरफ़ फेंके थे सारे पत्थर
है मेरे सर की ख़ता, ज़ख़्म जो सर में आये

पाँव सरयू में अभी राम ने धोये भी न थे
कि नज़र आये वहाँ ख़ून के गहरे धब्बे
पाँव धोये बिना सरयू के किनारे से उठे
राम ये कहते हुए अपने दुआरे से उठे
राजधानी की फ़ज़ा आई नहीं रास मुझे
छह दिसम्बर को मिला दूसरा बनवास मुझे

लघुकथा

माँ की चिन्ता

❖प्रतिभा राज

अरे! उधर खिड़की के बाहर यूँ टुकुर-टुकुर क्या देख रही है? अगर घर के काम-काज में थोड़ा जी लगा लेती तो...।"

तभी लाजो का बापू उसकी माँ की बात को बीच में ही काटते हुए बोला, "इसे क्यों कोस रही हो? आख़िर यह हमारा ही ख़ून है?"

चौदह वर्षीया लाजो पुनः घरेलू काम-काज में जुट गयी। परन्तु उसका ध्यान अभी भी अपनी माँ-बाप की बातचीत में उलझा हुआ था। "देखो जी! मैं साफ़-साफ़ कह देती हूँ... मुझे यूँ लड़कियों का ख़ाली बैठना क़तई पसन्द नहीं है...।"

"ऐसा भी क्या है...?"

"अगर यूँ ही ख़ाली बैठने की आदत बनी रही तो कल बदनामी किसकी होगी... रही अपने ख़ून की बात तो, भला बेटी कभी माँ-बाप की हो सकी है... पराया धन है... अगर उनमें अधिक मोह पड़ जाये तो बाद में... शायद कल वह किसी की बात सहन न कर पाये... और फिर उसका जीवन कहीं...।"

अपनी माँ का यह संवाद सुनकर वह भावना के सागर में डूब गयी और फिर वह पूरी तल्लीनता के साथ अपने काम में जुट गयी। ■■

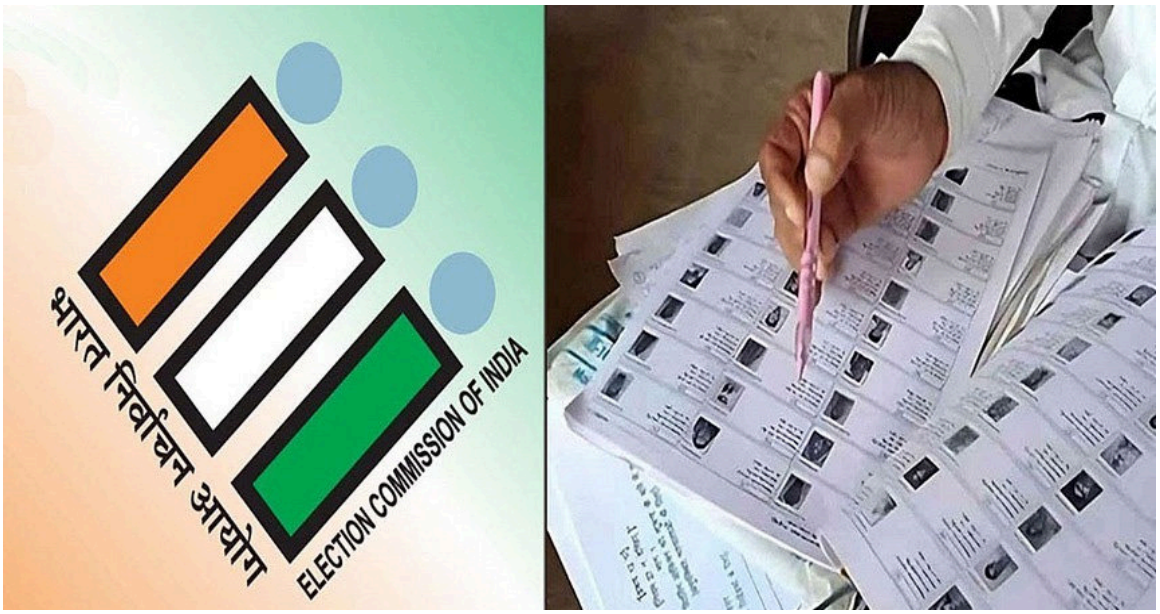
"वह व्यक्ति
जन्नत में प्रवेश नहीं कर
सकेगा, जिसके दिल में राई
के दाने (एक छोटे से कण)
के बराबर भी घमंड
होगा।"
(हदीस : मुस्लिम)

A Well Wisher

Jamaat Islami Hind
Nagda
Ujjain
(M.P.)

चुनावी प्रक्रिया

सत्ता और विपक्ष से आगे का सवाल



❖डॉ. प्रदीप कुमार

लोकतंत्र में मतदाता जब अपने मताधिकार का इस्तेमाल करता है, तो उसे भरोसा होना चाहिए कि उसकी भागीदारी का सम्मान किया जाएगा और चुनावी प्रक्रिया किसी राजनीतिक पक्षपात से प्रभावित नहीं होगी। यही भरोसा लोकतांत्रिक व्यवस्था की बुनियाद है। लेकिन जब चुनाव आयोग जैसी संवैधानिक संस्था के कामकाज पर सवाल उठने लगें और उन सवालों के जवाब स्पष्ट रूप से सामने न आएँ, तो यह चिंता का विषय बन जाता है।

विशेष गहन पुनरीक्षण (एसआईआर) को लेकर जारी विवाद ने इसी चिंता को सामने ला दिया है। विपक्षी दल चुनाव आयोग की विश्वसनीयता पर सवाल उठा रहे हैं। ख़बरों के अनुसार, तीन में से दो निर्वाचन आयुक्तों—सुखबीर सिंह संधू और विवेक जोशी—ने दस महीनों के दौरान कम-से-कम 14 मौक़ों पर एसआईआर से जुड़े फ़ैसलों और प्रक्रियाओं पर आपत्तियाँ दर्ज की थीं। ये आपत्तियाँ फॉर्म 6 में बदलाव, मतदाता सूची से संबंधित सॉफ्टवेयर पर नियंत्रण के केंद्रीकरण, पश्चिम बंगाल में मतदाताओं के नाम बहाल किए जाने के विरुद्ध अपीलों और कथित तौर पर पूरे आयोग की जानकारी या मंज़ूरी के बिना लिए गए फ़ैसलों से जुड़ी थीं।

इन ख़बरों ने चुनाव आयोग के कामकाज में पारदर्शिता और जवाबदेही की आवश्यकता को और महत्त्वपूर्ण बना दिया है। निर्वाचन आयुक्तों के बीच किसी प्रक्रिया को लेकर मतभेद होना अपने आप में असामान्य नहीं है। किसी भी संस्थान में विचार-विमर्श और असहमति निर्णय प्रक्रिया का हिस्सा हो सकते हैं। लेकिन जब ये मतभेद मतदाता सूची और चुनावी प्रक्रियाओं जैसे संवेदनशील विषयों से जुड़े हों, तो उनके कारणों और समाधान के बारे में स्पष्ट जानकारी सामने आनी चाहिए।

निर्वाचन आयोग ने अपने प्रेस नोट में कहा कि आंतरिक टिप्पणियाँ और आपत्तियाँ चुनावी प्रक्रियाओं को बेहतर बनाने के लिए संस्थागत विचार-विमर्श का सामान्य हिस्सा हैं। आयोग ने यह भी दावा किया कि पिछले एक वर्ष में उसके सभी फ़ैसले सर्वसम्मति से लिए गए। लेकिन सवाल यह है कि सर्वसम्मति

के इस दावे से उन विशिष्ट आपत्तियों का समाधान कैसे हो जाता है, जो स्वयं निर्वाचन आयुक्तों ने दर्ज की थीं? फॉर्म 6 में विवादित बदलाव को किसने मंज़ूरी दी? पश्चिम बंगाल में बहाल किए गए मतदाताओं के नामों के विरुद्ध अपीलों की अनुमति किसने दी? चुनावी सॉफ्टवेयर के ऑडिट की माँग से जुड़ी चिंताओं पर क्या कार्रवाई हुई? इन सवालों के जवाब लोकतंत्र में जनता के भरोसे के लिए आवश्यक हैं।

सर्वसम्मति का दावा करना और यह स्पष्ट करना कि वह किन प्रक्रियाओं के माध्यम से बनी, दो अलग-अलग बातें हैं। किसी संस्था की विश्वसनीयता केवल उसके अपने आश्वासनों से स्थापित नहीं होती। उसके निर्णयों, प्रक्रियाओं और जवाबदेही में भी यह विश्वसनीयता दिखाई देनी चाहिए। यदि किसी प्रक्रिया पर संदेह व्यक्त किया जाता है, तो उसका सबसे अच्छा जवाब तथ्यों और रिकॉर्ड के आधार पर दिया जाना चाहिए, न कि केवल यह कहकर कि सब कुछ नियमानुसार हुआ है।

एसआईआर से जुड़ा मौजूदा विवाद को भाजपा और विपक्ष के बीच राजनीतिक संघर्ष तक सीमित कर देना उचित नहीं होगा। चुनाव आयोग न तो सत्तारूढ़ दल की संस्था है और न ही विपक्ष की। वह संविधान के तहत गठित संस्था है, जिसकी ज़िम्मेदारी सभी राजनीतिक दलों और मतदाताओं के प्रति है। उसकी निष्पक्षता केवल दिखाई ही नहीं देनी चाहिए, बल्कि उसके कामकाज और निर्णयों में भी स्पष्ट रूप से प्रतिबिंबित होनी चाहिए।

इस संदर्भ में चुनाव आयोग को एक प्रेस वार्ता आयोजित करनी चाहिए, जिसमें तीनों निर्वाचन आयुक्त मौजूद हों। उन्हें उठाए गए सवालों के जवाब देने चाहिए और संबंधित फ़ैसलों तथा प्रक्रियाओं की व्याख्या करनी चाहिए। साथ ही, यह स्पष्ट किया जाना चाहिए कि कौन-से रिकॉर्ड क़ानूनी रूप से सार्वजनिक किए जा सकते हैं और निर्वाचन आयुक्तों द्वारा दर्ज आपत्तियों पर किस तरह विचार किया गया तथा उनका समाधान कैसे निकाला गया। इससे न केवल मौजूदा विवाद को स्पष्ट करने में मदद मिलेगी, बल्कि भविष्य में चुनावी प्रक्रियाओं को लेकर उठने वाली चिंताओं का समाधान करने का रास्ता भी खुलेगा।

चुनाव आयोग की विश्वसनीयता का प्रश्न राजनीतिक दलों के व्यवहार से भी जुड़ा है। जब सत्तारूढ़ दल आयोग के बचाव में उतरता है, तो अनजाने में यह धारणा मज़बूत हो सकती है कि आयोग और सरकार राजनीतिक रूप से एक-दूसरे के साथ खड़े हैं। किसी भी संवैधानिक संस्था के लिए ऐसी धारणा उचित नहीं है। भाजपा ने चुनावों में जीत भी हासिल की है और हार का सामना भी किया है। भविष्य में भी राजनीतिक परिस्थितियाँ बदल सकती हैं। इसलिए निष्पक्ष और स्वतंत्र चुनाव आयोग किसी एक दल की नहीं, बल्कि सभी राजनीतिक दलों और नागरिकों की आवश्यकता है।

चुनाव आयुक्तों की नियुक्ति की प्रक्रिया भी इसी संदर्भ में महत्त्वपूर्ण है। संविधान के अनुच्छेद 324 (2) के तहत निर्वाचन आयोग की नियुक्तियों के संबंध में विश्वसनीय व्यवस्था सुनिश्चित करना आवश्यक है। वर्ष 2023 में सर्वोच्च न्यायालय ने संसद द्वारा क़ानून बनाए जाने तक प्रधानमंत्री, लोकसभा में विपक्ष के नेता और भारत के मुख्य न्यायाधीश की समिति द्वारा नियुक्तियों की सिफ़ारिश किए जाने की व्यवस्था दी थी। इसके बाद संसद ने क़ानून पारित किया, जिसमें मुख्य न्यायाधीश की जगह प्रधानमंत्री द्वारा नामित केंद्रीय मंत्री को शामिल किया गया। इससे चयन समिति में सरकार को संख्यात्मक बढ़त मिल गई। नियुक्ति प्रक्रिया की निष्पक्षता को लेकर उठने वाली चिंताओं का समाधान करना भी लोकतांत्रिक संस्थाओं में विश्वास बनाए रखने के लिए ज़रूरी है।

मौजूदा विवाद को भाजपा और विपक्ष के बीच राजनीतिक संघर्ष तक सीमित कर देना उचित नहीं होगा। चुनाव आयोग न तो सत्तारूढ़ दल की संस्था है और न ही विपक्ष की। वह संविधान के तहत गठित संस्था है, जिसकी ज़िम्मेदारी सभी राजनीतिक दलों और मतदाताओं के प्रति है। उसकी निष्पक्षता केवल दिखाई ही नहीं देनी चाहिए, बल्कि उसके कामकाज और निर्णयों में भी स्पष्ट रूप से प्रतिबिंबित होनी चाहिए।

लोकतंत्र में सवाल उठना अस्वाभाविक नहीं है। असली कसौटी यह है कि संस्थाएँ उन सवालों का सामना कैसे करती हैं। चुनाव आयोग के लिए भी यही अवसर है कि वह पारदर्शिता और जवाबदेही के माध्यम से अपनी विश्वसनीयता को मज़बूत करे। क्योंकि चुनाव की निष्पक्षता पर भरोसा ही मतदाता के अधिकार, जनादेश की स्वीकार्यता और लोकतांत्रिक व्यवस्था की मज़बूती सुनिश्चित करता है। भारत का लोकतंत्र ऐसे ही निष्पक्ष, पारदर्शी और जवाबदेह चुनाव आयोग का हक़दार है। ■■

एंटी सुसाइड फ़ैन...

❖डॉ. अहमद उरूज मुदस्सिर

गुजरात के शहर सूरत में स्थित वीर नर्मद दक्षिण गुजरात यूनिवर्सिटी में विद्यार्थियों की सुरक्षा के लिए 388 विशेष पंखों की स्थापना देखने में एक तकनीकी ख़बर है, लेकिन इसके पीछे एक ऐसा सवाल छिपा हुआ है जिस पर हमारे शैक्षणिक संस्थानों, सरकार और समाज को संजीदगी से ग़ौर करना चाहिए। इंडिया टुडे की 23 अक्टूबर 2026 की ख़बर के मुताबिक़ यूनिवर्सिटी ने अपने नौ हॉस्टलों में ऐसे पंखे लगाए हैं जिनके हैंगरों में स्प्रिंग की व्यवस्था मौजूद है जिसके परिणामस्वरूप असाधारण वज़न पड़ने पर पंखा नीचे झुक जाता है और बिजली की आपूर्ति कट जाती है। इस क़दम का मक़सद छात्रों की सुरक्षा को बेहतर बनाना है। इस मक़सद की अहमियत से इनकार नहीं किया जा सकता क्योंकि किसी भी शैक्षणिक संस्थान की बुनियादी ज़िम्मेदारी है कि वहाँ शिक्षा प्राप्त करने वाले नौजवान सुरक्षित माहौल में रहें और अपने जीवन के सबसे महत्वपूर्ण चरण को शांति के साथ गुज़ार सकें। लेकिन ख़बर पढ़ते हुए मन में एक सवाल ज़रूर उठता है कि क्या पंखों की बनावट बदल देने से विद्यार्थियों की आत्महत्या की समस्या हल हो जाएगी? यक़ीनन नहीं। यह एक एहतियाती उपाय है और यदि इससे किसी की जान बच सकती है तो इसे सुखद समझा जाना चाहिए। सुरक्षात्मक इंतज़ाम अपनी जगह अहम हैं और उन हालात को समझना भी ज़रूरी है जो किसी छात्र को गंभीर मानसिक परेशानी में डाल सकते हैं। हमें दोनों पहलुओं पर एक साथ ध्यान देना होगा। महज़ पंखे बदलने पर आपत्ति जताना भी सही नहीं है, लेकिन इस क़दम को समस्या का पूर्ण समाधान मानकर संतुष्ट हो जाना भी उचित नहीं है। असली ज़रूरत यह है कि हम इस ख़बर को एक व्यापक शैक्षणिक और सामाजिक मुद्दे पर विचार करने का अवसर बनाएँ। देश में छात्रों की आत्महत्याओं का मुद्दा नया नहीं है लेकिन इसकी गंभीरता के बावजूद इस पर होने वाली चर्चा अक्सर कुछ दिनों तक ही सीमित रहती है। कोई दुखद घटना घटती है, इस पर चिंता व्यक्त की जाती है, ज़िम्मेदारों से सवाल किए जाते हैं और फिर धीरे-धीरे सब कुछ सामान्य हो जाता है। अगली घटना तक हमारा ध्यान किसी दूसरे विषय की तरफ़ चला जाता है। हमें छात्रों के जीवन से जुड़े ख़तरों को सिर्फ़ घटनाओं के बाद याद करने के बजाय उनकी रोकथाम को निरंतर प्राथमिकता बनाना होगा। इसके लिए यह आवश्यक है कि हम भावनात्मक प्रतिक्रियाओं से आगे बढ़ें और उपलब्ध साक्ष्यों, संस्थागत ज़िम्मेदारियों और शैक्षणिक नीतियों का जायज़ा लें।



अख़बार फ्रंटलाइन ने अपने लेख "India's student suicide crisis and the data gap" में छात्रों की आत्महत्याओं के मुद्दे और इससे जुड़े आँकड़ों में मौजूद अंतराल की तरफ़ ध्यान दिलाया है। यह एक महत्वपूर्ण बिंदु है क्योंकि किसी समस्या की गंभीरता समझने के लिए सिर्फ़ घटनाओं की संख्या जानना काफ़ी नहीं होता बल्कि यह भी मालूम होना चाहिए कि आँकड़े किन लोगों से संबंधित हैं, उनका वर्गीकरण किस आधार पर किया गया है और उनसे किन परिणामों तक पहुँचा जा सकता है। राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो (NCRB) के वर्ष 2024 के आँकड़ों के मुताबिक़ भारत में इस साल छात्रों की आत्महत्याओं के 14,488 मामले

दर्ज हुए, जबकि वर्ष 2023 में यह संख्या 13,892 थी। इस तरह एक साल के दौरान दर्ज मामलों में क़रीब 4.3 फ़ीसद इज़ाफ़ा हुआ। वर्ष 2024 में छात्रों से जुड़े मामले देश में दर्ज होने वाली कुल आत्महत्याओं का क़रीब 8.5 फ़ीसद थे। ये आँकड़े निश्चित रूप से चिंताजनक हैं, लेकिन उनका सही अर्थ समझना भी ज़रूरी है। इनमें विभिन्न शैक्षणिक स्तरों के छात्र शामिल हो सकते हैं; इसलिए इन आँकड़ों को सिर्फ़ कॉलेजों और यूनिवर्सिटीयों के छत्रों की आत्महत्याओं की संख्या क़रार देना सही नहीं होगा। इसी तरह इन आँकड़ों के आधार पर यह निष्कर्ष भी नहीं निकाला जा सकता कि हर घटना का कारण परीक्षा का दबाव या शिक्षा व्यवस्था थी। आँकड़ों का यही गैप एक अहम समस्या बन जाता है। हमें यह जानने की ज़रूरत है कि विभिन्न शैक्षणिक स्तरों पर स्थिति क्या है, छात्रों को किन समस्याओं का सामना है और उनकी मदद के लिए मौजूद इंतज़ाम किस हद तक प्रभावी हैं। अगर हमें सिर्फ़ यह मालूम हो कि कितने छात्रों की आत्महत्या की घटनाएँ दर्ज हुईं, लेकिन यह समझने के लिए पर्याप्त जानकारी न हो कि अलग-अलग परिस्थितियों में कौन से कारक प्रमुख थे और समय पर मदद कहाँ उपलब्ध नहीं हो सकी, तो प्रभावी नीति बनाना मुश्किल होगा। आँकड़ों का मक़सद सिर्फ़ एक चिंताजनक आँकड़ा पेश करना नहीं बल्कि उनकी बुनियाद पर समस्या को समझना और उसकी रोकथाम के लिए बेहतर क़दम उठाना है। इसी लिए अख़बार फ्रंटलाइन में उठाया गया डेटा का सवाल इस बहस में ख़ास अहमियत रखता है।

राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो (NCRB) के वर्ष 2024 के आँकड़ों के मुताबिक़ भारत में इस साल छात्रों की आत्महत्याओं के 14,488 मामले दर्ज हुए, जबकि वर्ष 2023 में यह संख्या 13,892 थी। इस तरह एक साल के दौरान दर्ज मामलों में क़रीब 4.3 फ़ीसद इज़ाफ़ा हुआ।

यहाँ एक बात स्पष्ट रहनी चाहिए कि आत्महत्या एक जटिल मानवीय समस्या है। इसके पीछे मानसिक स्वास्थ्य, पारिवारिक हालात, आर्थिक मुश्किलें, सामाजिक दबाव, अकेलापन और शैक्षणिक समस्याओं समेत विभिन्न कारक हो सकते हैं। हर घटना की स्थिति अलग होती है, इसलिए किसी एक वजह को सभी घटनाओं पर लागू करना सही नहीं है। लेकिन इस हक़ीक़त को आधार बनाकर शैक्षणिक संस्थानों की ज़िम्मेदारी से भी इन्कार नहीं किया जा सकता। यदि किसी छात्र को शैक्षणिक माहौल में मुश्किलें आ रही हों, उसकी शिकायत नहीं सुनी जा रही हो, उसे लगातार अपमान का सामना करना पड़ रहा हो या उसे अपनी परेशानी बयान करने का कोई भरोसेमंद रास्ता न मिले तो संस्थान को अपनी भूमिका का विश्लेषण ज़रूरी है। हर घटना की पूरी वजह जानना मुमकिन न भी हो, तब भी उन हालात को बेहतर बनाया जा सकता है जिन पर संस्थान का अधिकार है। हमारी शिक्षा व्यवस्था में एक समस्या यह भी है कि सफलता का पैमाना अक्सर कुछ नंबरों, ग्रेड या डिग्री तक सीमित हो जाता है। छात्र ने कितने नंबर हासिल किए, उसका सीजीपीए कितना है, वह कितनी जल्दी डिग्री पूरी करता है और उसे नौकरी कब मिलती है आदि। ये सवाल अहम हैं, लेकिन क्या यही किसी नौजवान की पूरी क्षमता और भविष्य का फ़ैसला करने के लिए काफ़ी हैं? शिक्षा का मक़सद सिर्फ़ परीक्षा में सफलता हासिल करना नहीं है बल्कि सोचने, समझने, सवाल उठाने, ग़लतियों से सीखने और ज़िंदगी की समस्याओं का सामना करने की क्षमता पैदा करना भी है। अगर हम छात्र के मूल्य को सिर्फ़ उसके शैक्षणिक प्रदर्शन से जोड़ दें तो हम शिक्षा के व्यापक उद्देश्य को सीमित कर देते हैं। किसी विषय में असफलता या उम्मीद से कम नंबर मिलना विद्यार्थी के लिए परेशानी का कारण बन सकता है। लेकिन उसे अपनी पूरी ज़िंदगी की असफलता मान लेना एक अलग मसला है। विद्यार्थी को यह एहसास होना चाहिए कि एक परीक्षा उसकी क़ाबिलियत का आख़िरी फ़ैसला नहीं करती और ज़िंदगी में आगे बढ़ने के लिए एक से ज़्यादा रास्ते मौजूद होते हैं। यह बात कहना आसान है, लेकिन इसे व्यावहारिक रूप से संभव बनाने के लिए शैक्षणिक संस्थानों और परिवारों दोनों को अपनी भूमिका निभानी होगी। अगर माँ-बाप बच्चे की तुलना दूसरों से करते रहें, शिक्षक असफलता को अपमान का ज़रिया बनाएँ और संस्थान विद्यार्थी को सिर्फ़ परिणामों के आधार पर परखें तो महज़ नसीहत करने से स्थिति नहीं बदलेगी।

यूनिवर्सिटी के स्तर पर यह मुद्दा ख़ास तवज्जो चाहता है। इस चरण में नौजवान अपनी शिक्षा के साथ भविष्य की योजनाएँ भी बना रहे होते हैं। बहुत से छात्र घर से दूर रहते हैं, परिवार की आर्थिक क़ुर्बानियों और रोज़गार की चिंता उनके साथ होती है। ऐसे में शैक्षणिक मुश्किलें, आर्थिक परेशानियाँ

और भविष्य की अनिश्चितता उनके लिए मानसिक दबाव बढ़ा सकती हैं।

परीक्षाओं, परिणामों, बैकलॉग, उपस्थिति, स्कॉलरशिप और फ़ीस से जुड़ी समस्याएँ भी विद्यार्थियों को प्रभावित करती हैं। परिणामों में देरी, अस्पष्ट नियम और शिकायतों का समय पर निवारण न होना उनकी परेशानी बढ़ा सकता है। इसलिए प्रशासनिक व्यवस्था का निष्पक्ष और प्रभावी होना ज़रूरी है। इसी तरह, शिक्षकों का रवैया भी छात्र के आत्मविश्वास को प्रभावित करता है। उचित मार्गदर्शन और रचनात्मक आलोचना जहाँ बेहतर माहौल बनाते हैं, वहीं सार्वजनिक अपमान और शिकायतों की अनदेखी छात्र के आत्मसम्मान को ठेस पहुँचा सकती है। अनुशासन और शैक्षणिक स्तर बनाए रखते हुए भी विद्यार्थियों के सम्मान का ख़्याल रखना आवश्यक है।

इसके साथ ही शिकायतों के निवारण की ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए जिस पर छात्रों को भरोसा हो। उन्हें यह डर नहीं होना चाहिए कि अपनी समस्या सामने रखने से उनके नंबर या भविष्य प्रभावित होंगे। शिकायत को व्यक्तिगत दुश्मनी के बजाय सुधार का अवसर समझना ही एक ज़िम्मेदार संस्थान की पहचान है।

पंखे बदलना एक सुरक्षात्मक उपाय है, लेकिन शिक्षा व्यवस्था में मानवीय संवेदना, न्याय और जवाबदेही पैदा करना कहीं ज़्यादा बड़ी ज़िम्मेदारी है। छात्रों के जीवन को सुरक्षित बनाने के लिए हमें दोनों मोर्चों पर काम करना होगा।

हॉस्टल का माहौल भी विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित करता है। साफ़-सफ़ाई, खाना, पानी, सुरक्षा, निजता और प्रशासन तक पहुँच जैसी बुनियादी सुविधाओं के साथ वहाँ का व्यवहारिक माहौल भी बेहतर होना चाहिए। घर से दूर रहने वाले छात्रों को अकेलेपन या किसी निजी परेशानी की स्थिति में मदद पाने का भरोसेमंद रास्ता मिलना चाहिए।

इसी तरह, हर बड़ी यूनिवर्सिटी में मानसिक स्वास्थ्य के लिए प्रशिक्षित विशेषज्ञों और गोपनीय काउंसलिंग की सुविधा होनी चाहिए। हालाँकि, काउंसलिंग ही हर समस्या का समाधान नहीं है। शैक्षणिक परेशानियों, शिकायतों और प्रशासनिक रुकावटों का निवारण भी ज़रूरी है। व्यक्तिगत मदद के साथ संस्थागत सुधार पर ध्यान देना ही विद्यार्थियों के लिए सुरक्षित और सहयोगी माहौल बना सकता है।

सरकार और उच्च शिक्षा संस्थानों की निगरानी करने वाले निकायों की ज़िम्मेदारी भी कम नहीं है। यूनिवर्सिटीयों को सिर्फ़ इमारतों, दाखिलों, परीक्षा परिणामों और डिग्रियों की तादाद की बुनियाद पर नहीं परखना चाहिए। विद्यार्थियों की भलाई, शिकायतों के निवारण, हॉस्टल की सुरक्षा और मानसिक स्वास्थ्य की सुविधाओं को भी संस्थागत मानकों का हिस्सा बनाया जाना चाहिए। नीति बनाना पहला क़दम है; उस पर अमल की निगरानी और कमियों को सुधारना इससे भी ज़्यादा अहम है। यदि कोई नियम मौजूद है, लेकिन उस पर अमल नहीं हो रहा तो सिर्फ़ उसके होने को सफलता नहीं कहा जा सकता।

सरकार को छात्रों की आत्महत्याओं से जुड़े प्रामाणिक और विस्तृत आँकड़े उपलब्ध कराने चाहिए, ताकि विभिन्न शैक्षणिक स्तरों पर स्थिति को समझकर प्रभावी नीतियाँ बनाई जा सकें। इस प्रक्रिया में छात्रों और प्रभावित परिवारों की गोपनीयता और गरिमा का पूरा ध्यान रखा जाना चाहिए।

इसमें माँ-बाप और समाज की भूमिका भी अहम है। नौजवानों पर अच्छे नंबर लाने, दूसरों से बेहतर प्रदर्शन करने और पढ़ाई पूरी करते ही रोज़गार पाने का दबाव नहीं डालना चाहिए। हर व्यक्ति का सफ़र अलग होता है। छात्रों को यह एहसास होना चाहिए कि उनकी क़ीमत सिर्फ़ नंबरों, डिग्री या नौकरी से तय नहीं होती और मुश्किल वक़्त में मदद माँगना कमज़ोरी नहीं है।

मीडिया को भी आत्महत्या से जुड़ी ख़बरों में सनसनीखेज़ी और ग़ैर-प्रमाणित दावों से बचना चाहिए। ऐसी रिपोर्टिंग होनी चाहिए जो समस्या को समझने, मदद के रास्ते बताने और उसकी रोकथाम के उपायों पर ध्यान केंद्रित करे। गंभीर पत्रकारिता का उद्देश्य सिर्फ़ घटनाएँ बताना नहीं, बल्कि समाज को ज़िम्मेदारी से विचार करने के लिए प्रेरित करना भी है।

पंखे बदलना एक सुरक्षात्मक उपाय है, लेकिन शिक्षा व्यवस्था में मानवीय संवेदना, न्याय और जवाबदेही पैदा करना कहीं ज़्यादा बड़ी ज़िम्मेदारी है। छात्रों के जीवन को सुरक्षित बनाने के लिए हमें दोनों मोर्चों पर काम करना होगा।■■ *(साभार : दावत वीकली)*

क़ौम के अहले- सर्वत और
अहले - ख़ैर हज़रात से
ख़ुसूसी अपील

यतीमख़ाना इस्लामिया गया आपके माली ताआवुन का मुंतज़िर है

109 साल की ख़िदमात



तआरुफ़ इदारा की बुनियाद अक्तूबर 1917 में एक उस्ताद और दो यतीम बच्चों से आठ आने (50 पैसे) माहवार किराया की कोठरी में Rs. 30 रुपये की छोटी-सी रक़म से पड़ी थी **तालीमी साल :** अप्रैल ता मार्च **तालीमी मराहिल :** इब्तिदाई, • सानवी, • आला, • शोबा-ए-हिफ़्ज़ व नाज़रा, • इनायत (I.T.I) • पांच जवानों में तालीम • अरबी • उर्दू • फ़ारसी • हिन्दी • अंग्रेज़ी • तादाद ज़ेरे-तालीम तलबा व तालिबात : तक़रीबन 450 **• तादाद कुल यतीम तलबा** 60 • बेरूनी तलबा, जो अपना ख़र्च देकर हॉस्टल में रहते हैं, उसके अलावा हैं। • तादाद तदरीसी व ग़ैर-तदरीसी स्टाफ़ : 28 **सालाना ख़र्च :** चालीस लाख (RS. 40,00,000) रुपये से ज़्यादा। **ज़रिया आमदनी :** मुस्लिम अवाम के चंदे। **ख़र्चे :** यतीम तलबा का सारा ख़र्च (तआम, क़ियाम, रिहाइश वग़ैरा बिल्कुल मुफ़्त [Free]) ये सारा ख़र्च इदारा पूरा करता है। किसी तरह का कोई ख़र्च नहीं लिया जाता है। **याद रखें :** (1) यहां का कोई भी मुहस्सिल कमीशन या उजरत पर चंदा वसूल नहीं किया करता है। (2) पांच ज़बानों में क़ुरआन व इस्लामियात के साथ क्लास 1 से मैट्रिक (Matric) तक (जो बिहार बोर्ड से मंज़ूरशुदा है) मेयारी तालीम दी जाती है। • हिफ़्ज़ के साथ-साथ मैट्रिक का नज़्म (3) 108 साल से इदारा यतीम और ग़ैर-यतीम तलबा की इस्लामी माहौल में दीनी व असरी तालीम के साथ तालीमी व तरबियती ख़िदमात अंजाम दे रहा है। (4) इदारा ही के अहाते (Campus) में दो हरे-भरे पार्क के साथ शानदार मस्जिद, तालीमगाह, इक़ामतगाह, मतबख़ और दूसरे शोबे वग़ैरा हैं • इसलिए तलबा को कहीं आना-जाना नहीं पड़ता है। **किफ़ाला स्कीम (Sponsorship)** के तहत एक यतीम तालिब-इल्म का सालाना ख़र्च तीस हज़ार रुपये RS. 30,000 है। आप भी इस कारे-सवाब में शरीक हों। • यहां के तलबा को मैट्रिक (Matric) पास करने के बाद कॉलेज के अलावा अरबी यूनिवर्सिटी में आलिमियत के पहले व दूसरे साल में आसानी से दाख़िला मिल जाता है। (5) यतीमख़ाना से मैट्रिक पास करने वाले यतीम तलबा का दाख़िला यतीमख़ाना के इनायत (I.T.I.) में बिल्कुल मुफ़्त (Free) है। उनसे किसी तरह का कोई ख़र्च नहीं लिया जाता है। पहले ही की तरह रहने-सहने और खाने-पीने की सारी सहूलियात दी जाती है। **अपील :** इस माद्दापरस्ताना (Materialistic) और जदीद दौर में दीनी व असरी उलूम के रिहाइशी (Residential) इदारों की पहले से कहीं ज़्यादा ज़रूरत है। • आप आसमान छूती महंगाई में इदारा की भरपूर माली मदद करें। तआवुन की मुख़्तलिफ़ शक्लें हैं जैसे • ज़कात • अतियात • सदकात वग़ैरा और इदारा के बाक़ी तालीमी व तामीरी मन्सूबों के लिए भी रुपये की बहुत ज़रूरत है। इदारा आपसे नन्हे-मुन्ने मासूम यतीम बच्चों को तालीम के साथ-साथ बाहुनर बनाने के लिए और उन्हें ऊंचा उठाने के लिए फ़राख़दिलाना माली तआवुन की अपील करता है।

नोट : इदारा की मुख़्तसर तारीख़ दस्तावेज़ी फ़िल्म (Documentary Film) नज़रे-इनायत (Nazr-e-Enayeth) यू-ट्यूब (You Tube) पर देखें।

चैक व ड्राफ़्ट और कोर बैंकिंग स्लिप पर सिर्फ़ यह लिखें : THE GAYA MUSLIM ORPHANAGAE

बराए राबिता चैक व ड्राफ़्ट और मनीऑर्डर भेजने का पता
Hon. Secretary, THE GAYA MUSLIM ORPHANAGE,
Cherki-824237, Distt. : Gaya (Bihar) India

Mobile : 9801213022, Whatsapp No. : 7258063440

Beneficiary Name
THE GAYA MUSLIM ORPHANAGE
Bank A/C No.: 300402010010581 (ज़कात/Zakat)
Bank A/C No.: 300402010002982 (डोनेशन/Donation)
Bank IFSC Code No: UBIN0530042
Bank: UNION BANK OF INDIA
(MAIN BRANCH GAYA)

Scan & Pay

याद रखें : बैंक में रक़म ट्रांसफ़र की तफ़्सील बराए-मेहरबानी स्कैन एंड पै पर (Scan & Pay) या किसी ज़रिये से रक़म ट्रांसफ़र के बाद स्क्रीन शॉट (Screen Shot) और नाम व पता ऊपर के व्हाट्सऐप नम्बर पर भेज दें ताकि रसीद भेजी जा सके।

इंजीनियर मुहम्मद हसनैन ख़ान (सदर)
9631867066

डॉक्टर जेड. एच. ख़ान
एज़ाज़ी सेक्रेट्री

E-mail : gmocde@yahoo.com.in
Website : www.gmogaya.in

पटना ब्रांच ऑफ़िस : पटना शहर के हमदर्द अपना चैक व ड्राफ़्ट और रक़म देने के लिए इनसे राबिता क़ायम करें।
जनाब ग़ुलाम मुहम्मद ख़ां (सदर) समनपूरा, पटना, मोबाइल : 9934943229
जनाब इंजीनियर मुहम्मद हसनैन ख़ां, समनपूरा, पटना, मोबाइल : 9631867066

असंतोष की वैश्विक लहर

❖डॉ. फ़रहत हुसैन

इक्कीसवीं सदी के तीसरे दशक में विश्व एक अजीब और भयावह अंतर्विरोध से गुज़र रहा है। एक तरफ़ तकनीकी उन्नति, कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) का प्रसार और नई-नई खोजों की चकाचौंध है, तो दूसरी तरफ़ इसी चकाचौंध के पीछे जन-असंतोष का एक विशाल समुद्र है। वैश्विक परिदृश्य में जन-असंतोष के साथ नागरिक सुविधाओं की माँग भी तीव्र होती जा रही है।

युवाओं का वैश्विक रोष व्यवस्थागत विफलता, सत्ता के संस्थागत अहंकार और कॉरपोरेट-परस्त आर्थिक नीतियों के ख़िलाफ़ एक मज़बूत आवाज़ है। यह आलेख केवल सतही बदलावों की वकालत नहीं करता, बल्कि उस गहरी खाई को रेखांकित करता है, जो आज शासक और शासित, अमीर और ग़रीब तथा नीति और नीयत के बीच खिंच चुकी है। मानवाधिकारों के संरक्षण से जुड़ी वैश्विक संस्थाएँ और लोकतांत्रिक 'कल्याणकारी' सरकारें आज आम आदमी की बुनियादी ज़रूरतों को भी पूरा करने में नाकाम सिद्ध हो रही हैं।



आकांक्षाओं का मरुस्थल और अनिश्चितता का चक्रव्यूह

आज का युवा इतिहास में सबसे अधिक शिक्षित, जागरूक और तकनीकी रूप से सक्षम है। परंतु जब वह विश्वविद्यालय की दहलीज़ लाँघकर समाज में क़दम रखता है, तो उसे अवसरों के बजाय व्यवस्थागत गतिरोध का सामना करना पड़ता है।

'इंटरनेशनल लेबर ऑर्गनाइज़ेशन' (ILO) की रिपोर्टें बताती हैं कि वैश्विक स्तर पर युवाओं में बेरोज़गारी की दर सामान्य दर से तीन गुना अधिक है। दुनिया भर में करोड़ों युवा 'अंडरइम्प्लॉयड' (योग्यता से कम स्तर का काम करने वाले) हैं। यह स्थिति युवाओं में एक अस्तित्वगत संकट (Existential Crisis) पैदा कर रही है। जब किसी समाज की सबसे ऊर्जावान पीढ़ी अपने भविष्य को लेकर असुरक्षित, कुंठित और आशंकित हो जाती है, तो उस समाज की स्थिरता ताश के पत्तों की तरह बिखरने लगती है। युवाओं का यह ग़ुस्सा केवल रोज़गार न मिलने का ग़ुस्सा नहीं है, बल्कि यह पूरी आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक संरचना के प्रति एक प्रकार का अविश्वास प्रस्ताव है।

यूरोपीय समाज का विखंडन

यह भ्रम अब पूरी तरह टूट चुका है कि मानवाधिकारों और आर्थिक सुरक्षा का संकट केवल तीसरी दुनिया या विकासशील देशों तक सीमित है। हक़ीक़त यह है कि आजकल यूरोपीय देशों में भी भारी रोष पाया जाता है। पेरिस की सड़कों पर उठता धुआँ तथा अन्य यूरोपीय देशों की सड़कों पर नागरिक असंतोष के स्वर इस बात के जीवंत प्रमाण हैं कि पूँजीवादी संपन्नता का मुखौटा अब उतर चुका है। इन विकसित यूरोपीय समाजों में भी शिक्षा, रोज़गार, बढ़ती महँगाई और महँगे आवास को लेकर गंभीर शिकायतें हैं। फ्रांस में 'येलो वेस्ट' (Gilets Jaunes) आंदोलन से लेकर हाल के वर्षों में ब्रिटेन और जर्मनी में हुए बड़े पैमाने के श्रमिक प्रदर्शन इसी व्यवस्थागत हताशा को दर्शाते हैं।

यूरोप की सांख्यिकी एजेंसियों के आँकड़े दर्शाते हैं कि पिछले कुछ समय में जीवनयापन की लागत (Cost of Living) में अप्रत्याशित वृद्धि हुई है। ऊर्जा संकट और मुद्रास्फीति ने वहाँ के मध्यम और निम्न-मध्यम वर्ग को हाशिए पर धकेल दिया है। रियल एस्टेट के वित्तीयकरण (Financialization of Housing) के कारण बर्लिन, एम्सटर्डम और पेरिस जैसे शहरों में सामान्य कामकाजी नागरिक को एक अदद मकान

का किराया चुकाने के लिए अपनी आधी से अधिक आय ख़र्च करनी पड़ती है। यह स्थिति एक नए प्रकार के 'शहरी सर्वहारा' को जन्म दे रही है, जिसके पास डिग्रियाँ तो हैं, लेकिन सिर छिपाने के लिए छत और सम्मानजनक जीवन जीने के साधन नहीं हैं।

मूल अधिकारों की कसौटी : नीतिगत विफलता या मानवाधिकारों का हनन?

इस पूरे परिदृश्य का सबसे चिंताजनक और विचारणीय पहलू यह है कि शिक्षा, रोज़गार, बढ़ती मुद्रास्फीति और महँगे आवास का नागरिकों के मौलिक अधिकारों से गहरा सम्बन्ध है। संयुक्त राष्ट्र की मानवाधिकारों की सार्वभौम घोषणा (UDHR) का अनुच्छेद 25 स्पष्ट रूप से कहता है कि हर व्यक्ति को भोजन, कपड़ा, मकान, चिकित्सा और आवश्यक सामाजिक सेवाओं सहित पर्याप्त जीवन स्तर का अधिकार है। परंतु आज की नीतियाँ आवास को एक मूल अधिकार मानने के बजाय मुनाफ़े की वस्तु मानती हैं।

शिक्षा और स्वास्थ्य जैसी बुनियादी ज़रूरतें, जो किसी भी कल्याणकारी राज्य की प्राथमिकता होनी चाहिए थीं, उनका अंधाधुंध निजीकरण कर दिया गया है। जब राज्य अपनी इन बुनियादी ज़िम्मेदारियों से पल्ला झाड़ लेता है, तो वह परोक्ष रूप से अपने ही नागरिकों के मूल अधिकारों का हनन कर रहा होता है। नागरिकों का यह रोष इसी हनन के ख़िलाफ़ एक स्वाभाविक प्रतिक्रिया है। जीवन के अधिकार को केवल साँस लेने की स्वतंत्रता तक सीमित नहीं रखा जाना चाहिए, बल्कि इसमें गरिमा, सुरक्षा और समृद्धि की बुनियादी शर्तें भी शामिल होनी चाहिए।

युद्ध की विभीषिका और UNO की विफलता

नागरिकों का यह रोष तब और अधिक गहरा तथा भयावह हो जाता है, जब वे वैश्विक स्तर पर घोर अराजकता और असुरक्षा का माहौल देखते हैं। द्वितीय विश्वयुद्ध की विभीषिका के बाद जिस वैश्विक व्यवस्था की स्थापना शांति और सुरक्षा के लिए की गई थी, वह आज पूरी तरह ढह चुकी है। युद्धों को रोकने में बड़े राष्ट्र तथा संयुक्त राष्ट्र संघ (UNO) पूरी तरह असफल रहे हैं।

यूक्रेन-रूस तथा ईरान-अमेरिका संघर्ष से लेकर मध्य-पूर्व (ग़ाज़ा और लेबनान) में जारी मानवीय त्रासदी इस बात की गवाह हैं कि संयुक्त राष्ट्र संघ महाशक्तियों के भू-राजनीतिक स्वार्थों की वेदी पर एक लाचार मूकदर्शक बनकर रह गया है। सुरक्षा परिषद (UNSC) में वीटो पावर का दुरुपयोग अंतरराष्ट्रीय न्याय का मखौल उड़ा रहा है। संयुक्त राष्ट्र की संस्थाएँ युद्ध अपराधों और मानवाधिकारों के खुले उल्लंघन पर केवल प्रस्ताव पारित करने और चिंता जताने तक सीमित हैं। वैश्विक मानवाधिकार संगठनों के आँकड़े दर्शाते हैं कि इन युद्धों में लाखों निर्दोष नागरिक, महिलाएँ और बच्चे अपनी जान गँवा रहे हैं और करोड़ों लोग विस्थापित होकर शरणार्थी बनने पर मजबूर हैं। जब दुनिया के बड़े और शक्तिशाली राष्ट्र ही अंतरराष्ट्रीय क़ानूनों की धज्जियाँ उड़ाने लगें, तो वैश्विक न्याय व्यवस्था से आम जनता का भरोसा उठना एक अवश्यंभावी परिणति है।

भेदभाव के नए आयाम : निवास स्थान और भाषाई वर्चस्व का दंश

आर्थिक और सुरक्षात्मक मोर्चे पर इस चौतरफ़ा विफलता के बीच सामाजिक स्तर पर भी विभाजन की रेखाएँ गहरी होती जा रही हैं। वैश्वीकरण (Globalization) ने भौगोलिक दूरियाँ तो कम की थीं, लेकिन दिलों की दूरियाँ और बढ़ा दी हैं। आज दुनिया के कई हिस्सों में निवास स्थान तथा भाषा के आधार पर भेदभाव के सवाल उठाए जा रहे हैं। पश्चिम के समृद्ध देशों में बढ़ती प्रवासन-विरोधी (Anti-Immigration) लहर और राजनीतिक ध्रुवीकरण इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है।

किसी व्यक्ति को केवल इसलिए संदेह, घृणा या दोयम दर्जे के व्यवहार का सामना करना पड़ता है, क्योंकि उसका जन्मस्थान किसी अन्य देश या क्षेत्र में है। इसके साथ ही, भाषाई वर्चस्ववाद और सांस्कृतिक समरूपता थोपने के प्रयासों ने क्षेत्रीय अस्मिताओं को संकट में डाल दिया है। भाषा केवल संवाद का माध्यम नहीं होती, वह किसी समाज की संस्कृति, इतिहास और गरिमा की संवाहक होती है। जब किसी भाषा या निवास स्थान के आधार पर रोज़गार, न्याय या सामाजिक स्वीकार्यता में भेदभाव किया जाता है, तो यह मानवाधिकारों के बुनियादी सिद्धान्तों पर सीधा प्रहार होता है। यह विभाजनकारी प्रवृत्ति समाज में एक नए प्रकार के आंतरिक उपनिवेशवाद और अलगाव को जन्म दे रही है।

निष्कर्ष

युवा पीढ़ी का वैचारिक दृष्टिकोण और उसका वैश्विक रोष हमें तात्कालिक संकटों से आगे बढ़कर एक गहरे आत्मनिरीक्षण की ओर ले जाता है। यह स्पष्ट हो चुका है कि वर्तमान वैश्विक संकट का समाधान केवल मौद्रिक नीतियों में थोड़े-बहुत सुधार या युद्धविराम के खोखले वादों से नहीं होने वाला है। अनेक समाजशास्त्रियों और अर्थशास्त्रियों के विचार में यूरोप का वर्तमान संकट केवल क़ानून-व्यवस्था की समस्या नहीं है, बल्कि यह उस "मॉडल" की गहरी दरारों को उजागर करता है, जिसमें नागरिकों का असंतोष साफ़ दिखाई दे रहा है। ■■

विश्व घटनाचक्र

बुलडोज़र कार्रवाई में पूरे हों क़ानूनी तक़ाज़े : राजस्थान हाईकोर्ट

किसी भी लोकतांत्रिक व्यवस्था में क़ानून का शासन सर्वोपरि होता है। प्रशासन को अतिक्रमण हटाने या अवैध निर्माण के ख़िलाफ़ कार्रवाई करने का अधिकार अवश्य है, लेकिन यह अधिकार मनमाने ढंग से इस्तेमाल नहीं किया जा सकता। किसी भी इमारत को गिराने से पहले निर्धारित क़ानूनी प्रक्रिया का पालन और प्रभावित पक्षों को अपनी बात रखने का पूरा अवसर देना प्रशासन की ज़िम्मेदारी है।



राजस्थान हाईकोर्ट की जोधपुर बेंच का हालिया आदेश इसी बुनियादी सिद्धांत की याद दिलाता है। बॉर्डर ज़िलों में मस्जिदों और दूसरी इमारतों को गिराने से जुड़े मामलों में अदालत ने स्पष्ट किया है कि शो-कॉज़ नोटिस पर जवाब और उस पर विधिवत विचार किए बिना तोड़-फोड़ नहीं होनी चाहिए। यह आदेश केवल संबंधित पक्षों के लिए राहत नहीं, बल्कि प्रशासनिक अधिकारों की सीमाओं को समझने का भी एक महत्त्वपूर्ण संदेश है।

जमीयत उलमा-ए-राजस्थान के अनुसार, इस कार्रवाई में 14 मस्जिदों और मज़ारों को गिराया गया। यदि प्रभावित लोगों को अपना पक्ष रखने का पर्याप्त अवसर नहीं मिला, तो यह गंभीर चिंता का विषय है। धार्मिक स्थलों का मामला संवेदनशील होने के साथ-साथ नागरिकों के क़ानूनी अधिकारों से भी जुड़ा है। यह ज़रूरी है कि प्रशासनिक कार्रवाई किसी पूर्वाग्रह, जल्दबाज़ी या दबाव के बजाय क़ानून और तथ्यों पर आधारित हो। अदालत के निर्देशों का ईमानदारी से पालन होना चाहिए। आख़िरकार, क़ानून की विश्वसनीयता तभी बनी रह सकती है, जब उसका पालन हर नागरिक और हर संस्था के लिए समान रूप से सुनिश्चित हो। ■■

ग़ाज़ा में नरसंहार के सबूत : संयुक्त राष्ट्र जाँच आयोग

ग़ाज़ा में जारी इज़राईली सैन्य कार्रवाई अब केवल युद्ध या क्षेत्रीय विवाद का मामला नहीं रह गई है, बल्कि मानवता, अंतरराष्ट्रीय क़ानून और वैश्विक जवाबदेही की गंभीर परीक्षा बन चुकी है। संयुक्त राष्ट्र के स्वतंत्र अंतरराष्ट्रीय जाँच आयोग के अध्यक्ष जस्टिस एस. मुरलीधर के निष्कर्ष इस संकट की भयावहता को सामने रखते हैं। उनके अनुसार, ग़ाज़ा में फ़िलिस्तीनियों को एक समुदाय के रूप में वहाँ रहने से रोकने और उनके अस्तित्व को मिटाने के इरादे से व्यवस्थित कार्रवाइयाँ की गई हैं।



आयोग को जान-बूझकर हत्याओं, बच्चों को निशाना बनाने, ज़बरन विस्थापन, जीवन की बुनियादी परिस्थितियों को नष्ट करने और प्रजनन रोकने जैसे गंभीर अपराधों के सबूत मिले हैं। वेस्ट बैंक में भी हिंसा और विस्थापन का विस्तार इस संकट को और गंभीर बनाता है। लाखों फ़िलिस्तीनी बुनियादी सुविधाओं, स्वास्थ्य सेवाओं, शिक्षा और सुरक्षित आवास से वंचित हैं।

इस पूरे घटनाक्रम का सबसे चिंताजनक पहलू यह है कि इतने गंभीर आरोपों और सबूतों के बावजूद अंतरराष्ट्रीय समुदाय की प्रतिक्रिया अपेक्षित स्तर की नहीं है। भारत जैसे देशों की भूमिका भी महत्त्वपूर्ण है, विशेषकर तब, जब इसराईल को सैन्य आपूर्ति और तकनीकी सहयोग जारी रहने की बात सामने आती है।

मानवाधिकारों की रक्षा केवल घोषणाओं से नहीं हो सकती। ज़रूरत है कि अंतरराष्ट्रीय समुदाय राजनीतिक हितों से ऊपर उठकर जवाबदेही सुनिश्चित करे, हथियारों की आपूर्ति पर पुनर्विचार करे और फ़िलिस्तीनियों के जीवन, सम्मान तथा आत्मनिर्णय के अधिकार की रक्षा के लिए ठोस क़दम उठाए। ■■

विश्व घटनाचक्र

स्वच्छ हवा का संकट

सर्दियों का मौसम अपने साथ केवल ठंड ही नहीं लाता, बल्कि समाज के सबसे कमज़ोर तबक़ों के सामने जीवन और स्वास्थ्य से जुड़ी गंभीर चुनौतियाँ भी खड़ी करता है। बेघर लोग, दिहाड़ी मज़दूर, बुज़ुर्ग, बच्चे और आर्थिक रूप से कमज़ोर परिवार इस मौसम में सबसे अधिक प्रभावित होते हैं। दूसरी ओर, वायु प्रदूषण की समस्या सर्दियों में और गंभीर हो जाती है। ऐसे में ठंड और प्रदूषण का दोहरा संकट जनस्वास्थ्य के लिए बड़ी चिंता का विषय है।



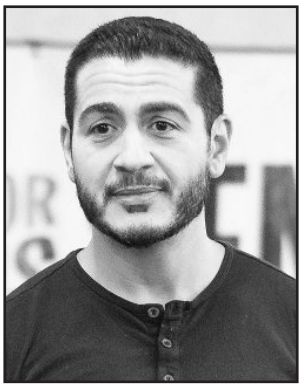
यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि हर साल सर्दियों के आगमन पर रैन बसेरों, कंबलों और राहत सामग्री की ज़रूरत महसूस की जाती है, लेकिन तैयारियाँ अक्सर समय रहते पूरी नहीं होतीं। सरकारों को चाहिए कि वे संकट बढ़ने की प्रतीक्षा करने के बजाय पहले से व्यापक व्यवस्था करें। रैन बसेरों में पर्याप्त जगह, साफ़-सफ़ाई, गर्म बिस्तर और भोजन की उपलब्धता सुनिश्चित की जाए। ज़रूरतमंदों तक गर्म कपड़े और कंबल पहुँचाने के साथ मोबाइल स्वास्थ्य सेवाओं का भी विस्तार किया जाए।

वायु प्रदूषण के मामले में भी केवल चेतावनी जारी करना पर्याप्त नहीं है। निर्माण कार्यों से उड़ने वाली धूल, कचरा जलाने और अन्य प्रदूषणकारी गतिविधियों पर प्रभावी नियंत्रण आवश्यक है। बच्चों, बुज़ुर्गों और बीमार लोगों की सुरक्षा के लिए विशेष स्वास्थ्य इंतिज़ाम होने चाहिए।

इस चुनौती से निपटना केवल सरकार की ज़िम्मेदारी नहीं, बल्कि सामाजिक सहभागिता का भी तक़ाज़ा है। नागरिक संगठनों, सामाजिक संस्थाओं और आम लोगों को मिलकर यह सुनिश्चित करना होगा कि कोई भी व्यक्ति ठंड, भूख और प्रदूषण के कारण असहाय न रह जाए। ■■

नेतन्याहू का समर्थन पड़ा ट्रंप पर भारी

संयुक्त राज्य अमेरिका के मध्यावधि चुनाव में राष्ट्रपति का चुनाव तो नहीं होता, लेकिन परिणाम बता रहा है कि ट्रम्प की रिपब्लिक पार्टी बहुमत तक नहीं पहुंच सकी। जानकारों का मानना है कि ईरान से युद्ध लड़ना और नेतन्याहू को सपोर्ट करना राष्ट्रपति ट्रम्प के लिए घाटे का सौदा साबित हुआ है।



चुनाव नतीजे राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप की नीतियों के प्रति जनता की नाराज़गी का स्पष्ट संकेत हैं। इन चुनावों में उनकी रिपब्लिकन पार्टी ने प्रतिनिधि सभा और सीनेट, दोनों में अपना बहुमत गंवा दिया। यह हार केवल घरेलू आर्थिक नीतियों के प्रति असंतोष का परिणाम नहीं है, बल्कि विदेश नीति, विशेषकर ईरान के साथ युद्ध और इसराईल के प्रधानमंत्री बेंजामिन नेतन्याहू को दिए जा रहे समर्थन ने भी इसमें महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

ईरान के साथ युद्ध ने अमेरिकी जनता पर आर्थिक बोझ बढ़ाया है। पेट्रोल की बढ़ती क़ीमतों और युद्ध पर होने वाले भारी ख़र्च ने आम नागरिकों की चिंताओं को बढ़ाया। ऐसे समय में जब अमेरिकी जनता रोज़गार, महंगाई और स्वास्थ्य सेवाओं जैसे मुद्दों पर राहत चाहती है, सरकार का युद्ध में उलझे रहना राजनीतिक रूप से महँगा साबित हुआ।

इन चुनावों में डेमोक्रेटिक पार्टी के उम्मीदवार अब्दुर्रहमान मुहम्मद अस्सैयिद की जीत भी विशेष महत्त्व रखती है। मिशिगन से सीनेट के लिए निर्वाचित होकर उन्होंने अमेरिकी राजनीति में एक नया इतिहास बनाया है। अमेरिका के इतिहास में वे पहले मुस्लिम सीनेटर बने हैं। इसराईल को सैन्य सहायता देने के विरोध और युद्ध समाप्त करने की उनकी मांग को व्यापक राजनीतिक समर्थन मिलना भी बदलती जनभावना का संकेत है।

ट्रंप के लिए यह परिणाम चेतावनी है कि विदेश नीति में सैन्य शक्ति और सहयोगियों का अंधा समर्थन जनता की आर्थिक और मानवीय चिंताओं से ऊपर नहीं हो सकता। ■■

विधान

ज़कात : आर्थिक सुधार का व्यावहारिक यंत्र

❖डॉ. फ़रहत हुसैन

ज़कात समाज के आर्थिक रूप से पिछड़े व्यक्तियों की सहायता के लिए दिया जाने वाला अनिवार्य दान है, जो संपन्न मुसलमानों पर उनकी जमा पूँजी और संपत्ति के आधार पर अनिवार्य रूप से देय है। इस्लाम के आर्थिक दर्शन की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह आय (Income) के बजाय मुख्य रूप से संचित धन या संपत्ति (Wealth/Assets) पर कर लगाने की वकालत करता है। इसका मुख्य उद्देश्य समाज में धन के संचय को रोकना और बाज़ार में तरलता (Liquidity) यानी पैसे के प्रवाह को बनाए रखना है। साथ ही, समाज के जो लोग आर्थिक दौड़ में किसी कारणवश पिछड़ जाएँ, किसी आपदा या मुसीबत का शिकार हो जाएँ अथवा परिवार का कमाने वाला व्यक्ति चल बसे और पीछे विधवा तथा अनाथ बच्चे रह जाएँ, उनकी बुनियादी आवश्यकताओं की पूर्ति का यह एक सामाजिक बीमा भी है।

इस्लाम में संपत्ति पर आधारित इस कर प्रणाली की रूपरेखा निम्नलिखित है :

संचित संपत्ति पर कर : ज़कात (Zakat) इस्लाम के पाँच स्तंभों (Pillars) में से एक है। यह कोई स्वैच्छिक दान नहीं, बल्कि एक अनिवार्य वार्षिक कर है, जो एक संपन्न मुसलमान को अपनी संपत्ति पर देना होता है।

कर की दर (Rate) : आमतौर पर यह कुल संचित संपत्ति का 2.5 प्रतिशत (ढाई प्रतिशत) होता है।

आय बनाम संपत्ति : यदि आप लाखों रुपये कमाते हैं, लेकिन वे सभी जायज़ ख़र्चों में ख़र्च हो जाते हैं, तो आप पर ज़कात लागू नहीं होती। इसके विपरीत, यदि कोई धन (सोना, नक़दी, व्यावसायिक संपत्ति आदि) एक साल तक आपके पास जमा रहता है, तो एक निश्चित सीमा के बाद उस पर ज़कात देनी होगी। यह सीमा न्यूनतम संपत्ति (निसाब) कहलाती है, जो 87.48 ग्राम सोने या 612.36 ग्राम चाँदी के मूल्य के बराबर होती है।

किन संपत्तियों पर कर (ज़कात) लगता है?

ज़कात हर तरह की संपत्ति पर नहीं लगती, बल्कि यह केवल उत्पादक या संचित धन पर लगती है। इसमें नक़दी और बैंक बैलेंस, बचत खातों में जमा राशि, सोना और चाँदी, आभूषण या क़ीमती सामान, व्यापारिक सामान (Merchandise) यानी बेचने के इरादे से स्टॉक में रखा गया सामान तथा शेयर बाज़ार या म्यूचुअल फंड में लगाया गया पैसा शामिल है।

किन पर नहीं लगती?

अपने रहने का मकान, व्यक्तिगत उपयोग की कार, घरेलू सामान और काम के उपकरण (जिनसे आप जीविका कमाते हैं) ज़कात के दायरे से बाहर हैं।

कृषि और प्राकृतिक संसाधनों पर कर (Ushr & Khums) : संपत्ति के अलावा, इस्लाम में उत्पादन के अन्य रूपों पर भी विशिष्ट कर प्रणाली है।

उश्र (Ushr) : यह कृषि भूमि की उपज पर लगने वाला कर है। यदि खेती प्राकृतिक वर्षा से हुई हो, तो उपज का 10 प्रतिशत और यदि मानव निर्मित सिंचाई (ट्यूबवेल आदि) से हुई हो, तो 5 प्रतिशत कर देना होता है। यह आय पर नहीं, बल्कि फ़सल की कुल उपज पर आधारित है।

खुम्स (Khums) : अचानक मिले ख़ज़ाने और खनिज पदार्थों (Minerals) पर 20 प्रतिशत (पाँचवाँ हिस्सा) कर लगाया जाता है।

जमाख़ोरी (Hoarding) पर रोक और निवेश को बढ़ावा : जब आप केवल बेकार रखी हुई संपत्ति (Idle Wealth) पर कर लगाते हैं, तो लोग अपनी संपत्ति को छिपाकर या तिजोरी में बंद रखने के बजाय उसे बाज़ार में निवेश करने के लिए प्रेरित होते हैं, क्योंकि निवेश न करने पर हर साल 2.5 प्रतिशत की दर से उनकी संपत्ति घटती जाएगी। इससे देश में रोज़गार और आर्थिक गतिशीलता बढ़ती है।

आज की अर्थव्यवस्था में एक बड़ी समस्या यह है कि अमीर लोग अपना पैसा अनुत्पादक संपत्तियों (जैसे ख़ाली ज़मीन, सोना या निष्क्रिय बैंक खातों) में रोककर रखते हैं। यदि संपत्ति पर 2.5 प्रतिशत कर लगेगा, तो लोग अपनी संपत्ति को घटने से बचाने के लिए उसे व्यवसायों, स्टार्टअप

और उत्पादक क्षेत्रों में निवेश करने के लिए प्रेरित होंगे। इससे रोज़गार के नए अवसर पैदा होंगे।

ज़कात से सहमत और इसकी सराहना करने वाले प्रमुख पश्चिमी विद्वान

1. थॉमस पिकेटी (Thomas Piketty) : थॉमस पिकेटी ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक Capital in the Twenty-First Century में मुख्य रूप से संपत्ति (Wealth) पर वैश्विक प्रगतिशील कर (Global Progressive Wealth Tax) लगाने की पुरज़ोर वकालत की है। उनका तर्क है कि केवल आय (Income) पर कर लगाना असमानता को रोकने के लिए काफ़ी नहीं है, क्योंकि आधुनिक अर्थव्यवस्थाओं में संपत्ति का संचय आय के मुक़ाबले बहुत तेज़ी से हो रहा है। पिकेटी ने इस संबंध में विस्तार से जो विचार और फ़ॉर्मूला प्रस्तुत किया है, वह इस्लाम की ज़कात प्रणाली के बहुत निकट है।

2. रसेल पॉवेल (Russell Powell) : रसेल पॉवेल सिएटल यूनिवर्सिटी स्कूल ऑफ़ लॉ में विधि के प्रोफ़ेसर रहे हैं। उन्होंने आधुनिक क़ानूनी और आर्थिक सिद्धांतों के संदर्भ में ज़कात की तुलना पर एक प्रसिद्ध शोधपत्र लिखा है।

मुख्य संदर्भ : शोधपत्र- Zakat: Drawing Insights for Legal Theory and Economic Policy from Islamic Jurisprudence. जर्नल- University of Pittsburgh Tax Review, खंड 7, पृष्ठ 43 (2009/2010)

निष्कर्ष : पॉवेल ने अपने इस शोध में 40 मुस्लिम-बहुल देशों के अनुभवजन्य विश्लेषण (Empirical Analysis) के आधार पर निष्कर्ष निकाला कि जहाँ ज़कात को स्वैच्छिक या अनिवार्य रूप से क़ानूनी व्यवस्था में शामिल किया गया है, वहाँ आर्थिक समानता और सामाजिक सुरक्षा (Social Safety Net) के क्षेत्र में आधुनिक प्रणालियों की तुलना में बेहतर परिणाम देखने को मिलते हैं।

3. डब्ल्यू. मोंटगोमरी वाट (W. Montgomery Watt) : प्रसिद्ध ब्रिटिश इतिहासकार वाट ने स्वीकार किया कि पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल.) द्वारा स्थापित यह व्यवस्था केवल धार्मिक नहीं थी, बल्कि इसने एक क्रांतिकारी सामाजिक-आर्थिक सुधार का काम किया, जिसने तत्कालीन अरब समाज में व्याप्त असमानता को ख़त्म करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। विलियम मोंटगोमरी वाट एडिनबर्ग विश्वविद्यालय में अरबी और इस्लामी अध्ययन के प्रोफ़ेसर थे।

मुख्य संदर्भ : पुस्तक- Muhammad at Medina (1956), ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस (क्लैरेंडन प्रेस)। विशेष अध्याय-The Character of the Islamic State और Reforms in the Social Structure

4. मैक्स वेबर (Max Weber) और आधुनिक समाजशास्त्री : मैक्स वेबर एक प्रसिद्ध जर्मन समाजशास्त्री और अर्थशास्त्री थे, जिन्होंने धर्मों के समाजशास्त्र (Sociology of Religion) पर व्यापक काम किया।

मुख्य संदर्भ : पुस्तक- The Sociology of Religion (मैक्स वेबर द्वारा मूल रूप से जर्मन भाषा में लिखी गई, जिसका बाद में अंग्रेज़ी में अनुवाद हुआ)।

पूरक तुलनात्मक अध्ययन : आधुनिक समाजशास्त्रियों (जैसे डॉ. फ़ातिमा अल-मतर और ज़ैम के शोधपत्रों) ने वेबर के 'सामाजिक क्रिया के सिद्धांत' (Theory of Social Action) को आधार बनाकर ज़कात और सामान्य कर के बीच अंतर को समझाया है।

वेबर के सिद्धांतों के आधार पर समाजशास्त्रियों का तर्क है कि जहाँ सामान्य राज्य करों (Modern Taxes) को लोग एक 'विधिक बाध्यता' (Legal Burden) मानते हैं और कर चोरी (Tax Evasion) की कोशिश करते हैं, वहीं ज़कात एक आंतरिक धार्मिक प्रेरणा और नैतिक कर्तव्य (Spiritual Obligation) के कारण बिना किसी ज़ोर-ज़बरदस्ती के समाज द्वारा पूरी ईमानदारी से अदा की जाती है।

संक्षेप में कहें तो पश्चिमी विद्वान ज़कात को एक धार्मिक दान से कहीं बढ़कर आर्थिक न्याय (Economic Justice) और ग़रीबी उन्मूलन (Poverty Alleviation) का एक बेहद वैज्ञानिक और व्यावहारिक औज़ार मानते हैं।

आर्थिक जगत के लिए ऑक्सीजन

इस्लाम में ज़कात एक अनिवार्य स्तंभ और इबादत है, मगर आर्थिक जगत के लिए यह ऑक्सीजन के समान है। इसके माध्यम से बाज़ार में धन का प्रवाह होता है। असंपन्न लोगों के हाथों में जो धन पहुँचता है, उससे बाज़ार में वस्तुओं और सेवाओं की माँग उत्पन्न होती है, जिससे उत्पादन तथा रोज़गार में वृद्धि होती है और समाज आर्थिक ख़ुशहाली की ओर अग्रसर होता है। प्रतिवर्ष मालदार लोगों के धन का कम से कम ढाई प्रतिशत हिस्सा ग़रीबों की ओर प्रवाहित होने से अमीर और ग़रीब के बीच का अंतर या आर्थिक असमानता धीरे-धीरे घटने लगती है। ■■

नवी पिल्लै को नोबेल शांति पुरस्कार

क़ानून के शासन का संदेश

❖मुशर्रफ़ अली

वर्ष 2026 के नोबेल शांति पुरस्कार के लिए दक्षिण अफ्रीका की प्रसिद्ध क़ानूनविद् और मानवाधिकारों की प्रबल समर्थक नवी पिल्लै (नवानीथन पिल्लै) के नाम की घोषणा की गई है। शांति और अंतरराष्ट्रीय क़ानून के विकास के लिए उनके जीवन भर के योगदान के सम्मान में आगामी 10 दिसंबर को उन्हें इस पुरस्कार से सम्मानित किया जाएगा।

जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, पिल्लै के माता-पिता, या कम-से-कम उनके पिता का सम्बंध भारत के राज्य तमिलनाडु से है। उनका जन्म 1940 में डरबन में हुआ और उनका बचपन तथा युवावस्था रंगभेद (अपार्थाइड) के दौर में बीती। 1967 में वे नटाल प्रांत में क़ानून की प्रैक्टिस शुरू करने वाली पहली अश्वेत महिला बनीं। उन्होंने रंगभेद-विरोधी कार्यकर्ताओं का बचाव किया और रोबेन आइलैंड जेल—जहाँ नेल्सन मंडेला क़ैद थे—के राजनीतिक क़ैदियों के अधिकारों के लिए संघर्ष किया। 1973 में उन्होंने उन क़ैदियों को वकील से मिलने का अधिकार दिलाकर एक ऐतिहासिक सफलता हासिल की।

रंगभेद की समाप्ति के बाद नेल्सन मंडेला की सिफ़ारिश पर वे दक्षिण अफ्रीका के हाई कोर्ट की पहली अश्वेत महिला जज बनीं। बाद में उन्होंने रवांडा के अंतरराष्ट्रीय आपराधिक न्यायाधिकरण में भी सेवाएँ दीं।

पिल्लै ने मानवाधिकारों के क्षेत्र में वैश्विक स्तर पर उल्लेखनीय भूमिका निभाई। वे अंतरराष्ट्रीय आपराधिक न्यायालय (ICC) की जज रहीं और 2008 से 2014 तक संयुक्त राष्ट्र की मानवाधिकार उच्चायुक्त के रूप में सेवाएँ देती रहीं।

म्यांमार के उत्पीड़ित रोहिंग्या मुसलमानों के लिए उनकी भूमिका विशेष रूप से सराहनीय रही है। वे अंतरराष्ट्रीय न्यायालय (ICJ) में म्यांमार के विरुद्ध नरसंहार के मामले की सुनवाई में जज के रूप में सेवाएँ दे रही हैं, जहाँ रोहिंग्या अल्पसंख्यक के विरुद्ध किए गए अत्याचारों पर सुनवाई हो रही है।

फ़िलिस्तीन के उत्पीड़ित लोगों के समर्थन में उनके प्रयासों ने भी विश्व का ध्यान आकर्षित किया। 2021 से 2025 तक वे संयुक्त राष्ट्र के स्वतंत्र अंतरराष्ट्रीय जाँच आयोग की अध्यक्ष रहीं, जो अधिकृत फ़िलिस्तीनी क्षेत्रों सहित इसराईल में मानवाधिकारों के उल्लंघनों की जाँच कर रहा था। इस आयोग ने 2025 में यह निष्कर्ष निकाला कि ग़ज़ा में इसराईल ने नरसंहार किया है। पिल्लै ने इस रिपोर्ट को बेबाकी से सामने रखा और उत्पीड़ित लोगों के अधिकारों की आवाज़ बनीं।

इस अवसर पर एक महत्वपूर्ण बात स्पष्ट करना आवश्यक है कि नोबेल शांति पुरस्कार के लिए नामांकनों की सूची 50 वर्षों तक गुप्त रखी जाती है। हालांकि, नॉर्वेजियन नोबेल संस्थान ने पुष्टि की है कि 2026 के लिए कुल 287 उम्मीदवार थे, जिनमें 208 व्यक्ति और 79 संगठन शामिल थे।

बहरहाल, नवी पिल्लै निस्संदेह इस वैश्विक सम्मान की अधिकारी हैं। नॉर्वेजियन नोबेल समिति ने स्पष्ट रूप से कहा है कि यह पुरस्कार शांति और अंतरराष्ट्रीय क़ानून को आगे बढ़ाने के उनके प्रयासों के लिए दिया गया है। समिति के अध्यक्ष यॉर्गेन वाटने फ़्राइडनेस के अनुसार, पिल्लै ने असाधारण साहस और ईमानदारी के साथ वैश्विक क़ानूनी व्यवस्था को सुदृढ़ बनाने की राह प्रशस्त की।

वह युद्ध अपराधों, मानवता के विरुद्ध अपराधों और नरसंहार के मामलों में अभियोजन की दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती रही हैं। उनका नैतिक विवेक हमेशा दृढ़ रहा और उन्होंने राज्यों तथा राष्ट्रीय नेताओं को जवाबदेह ठहराया। समिति ने इस बात पर ज़ोर दिया कि अंतरराष्ट्रीय क़ानून इस समय गंभीर दबाव में है और उसके संस्थान हमलों का निशाना बन रहे हैं। ऐसे समय में क़ानून के शासन को बनाए रखने वाली एक शख्सियत को सम्मानित करना इस व्यवस्था के महत्व को रेखांकित करता है। ■■

विचार

हमारा समाज, हमारी ज़िम्मेदारी

❖तबस्सुम शेख़, पुसद

समाज केवल लोगों की भीड़ का नाम नहीं है। समाज हमारे रिश्तों, व्यवहार, सोच, संस्कार और ज़िम्मेदारियों से बनता है। हम जिस समाज में रहते हैं, उसकी अच्छाइयों और कमियों से हम अलग नहीं हो सकते। अगर समाज में किसी ग़रीब के घर का चूल्हा नहीं जल रहा, किसी बुज़ुर्ग को सहारे की ज़रूरत है, कोई बच्चा शिक्षा से दूर है, किसी महिला के साथ अन्याय हो रहा है या कोई युवा ग़लत दिशा में जा रहा है, तो यह कहना कि "यह मेरी समस्या नहीं है" हमारी सामाजिक ज़िम्मेदारी से बचने जैसा है।

समाज केवल लोगों के एक साथ रहने का नाम नहीं है, बल्कि समाज हमारे व्यवहार, हमारी सोच, हमारी नैतिकता और हमारी ज़िम्मेदारियों से बनता है। हम अक्सर समाज की समस्याओं के लिए सरकार, प्रशासन या दूसरे लोगों को ज़िम्मेदार ठहराते हैं, लेकिन यह भूल जाते हैं कि समाज का निर्माण हम सब मिलकर करते हैं। अगर समाज में बुराई बढ़ रही है, तो उसके लिए केवल दूसरों को दोष देना पर्याप्त नहीं, बल्कि हमें स्वयं भी देखना होगा कि हमारी अपनी ज़िम्मेदारी क्या है। आज हम अपने अधिकारों के प्रति पहले से अधिक जागरूक हैं। हमें शिक्षा का अधिकार चाहिए, रोज़गार चाहिए, सम्मान चाहिए, सुरक्षा चाहिए और बेहतर जीवन चाहिए। यह सब ज़रूरी है, लेकिन इसके साथ हमें अपनी ज़िम्मेदारियों को भी समझना होगा। अधिकार और ज़िम्मेदारी एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। जिस समाज में हर व्यक्ति केवल अपने अधिकारों की माँग करे और अपनी ज़िम्मेदारी से बचता रहे, वहाँ सामाजिक संतुलन कमज़ोर होने लगता है।

बदलाव की शुरुआत ख़ुद से

हम अक्सर समाज की बुराइयों के लिए दूसरों को ज़िम्मेदार ठहराते हैं। हम कहते हैं कि आज के बच्चे बिगड़ गए हैं, युवा अपनी ज़िम्मेदारी भूल गए हैं, पड़ोसी एक-दूसरे की मदद नहीं करते, लोग झूठ बोलते हैं, भ्रष्टाचार बढ़ रहा है और इंसानियत कम होती जा रही है। लेकिन हमें कभी-कभी अपने आप से भी पूछना चाहिए कि इन समस्याओं को कम करने के लिए हमने क्या किया?

अगर हम चाहते हैं कि लोग सच बोलें, तो हमें ख़ुद सच बोलना होगा। अगर हम सम्मान चाहते हैं, तो हमें दूसरों का सम्मान करना होगा। अगर हम चाहते हैं कि समाज में नफ़रत कम हो, तो हमें अपने शब्दों और व्यवहार से नफ़रत फैलाने से बचना होगा। बड़े बदलाव हमेशा बड़े भाषणों से नहीं आते; कई बार छोटे-छोटे अच्छे व्यवहार ही समाज में बड़ी शुरुआत करते हैं।

परिवार हमारी पहली ज़िम्मेदारी है

एक अच्छे समाज की नींव अच्छे परिवार से रखी जाती है। बच्चा सबसे पहले अपने परिवार से सीखता है कि दूसरों के साथ कैसा व्यवहार करना है। इसलिए माता-पिता की ज़िम्मेदारी केवल बच्चों को पढ़ाना और भविष्य के लिए तैयार करना नहीं है, बल्कि उनके अंदर अच्छे संस्कार और नैतिक मूल्यों को मज़बूत करना भी है।

बच्चों को यह सिखाना ज़रूरी है कि ग़रीब का मज़ाक़ नहीं उड़ाना चाहिए, किसी की कमज़ोरी का फ़ायदा नहीं उठाना चाहिए, बुज़ुर्गों का सम्मान करना चाहिए, महिलाओं का सम्मान करना चाहिए और किसी व्यक्ति को उसकी जाति, धर्म या आर्थिक स्थिति के कारण छोटा नहीं समझना चाहिए।

महिलाओं और बच्चियों की सुरक्षा भी पूरे समाज की ज़िम्मेदारी है। किसी महिला की सुरक्षा केवल महिलाओं का विषय नहीं है। पुरुषों को अपनी निगाह, भाषा और व्यवहार की ज़िम्मेदारी समझनी होगी। समाज को पीड़ित व्यक्ति को दोष देने के बजाय अपराध करने वाले के व्यवहार पर सवाल उठाना चाहिए। बच्चियों को सुरक्षित वातावरण देना परिवार, विद्यालय, समाज और प्रशासन—सभी की साझा ज़िम्मेदारी है। इसी तरह बुज़ुर्गों का सम्मान करना भी हमारी सामाजिक ज़िम्मेदारी है। जिन माता-पिता ने अपनी पूरी ज़िंदगी बच्चों के भविष्य के लिए लगा दी, उनके जीवन के अंतिम पड़ाव में उन्हें अकेलापन और उपेक्षा नहीं मिलनी चाहिए। बुज़ुर्ग केवल परिवार का बोझ नहीं, बल्कि अनुभव और ज्ञान का स्रोत होते हैं।

समाज में जाति, धर्म और भाषा के नाम पर नफ़रत फैलाना भी हमारी ज़िम्मेदारी के विरुद्ध है। मतभेद होना स्वाभाविक है, लेकिन मतभेद को दुश्मनी में बदल देना समाज को कमज़ोर करता है। भारत का संविधान सभी नागरिकों को समानता और बंधुता की भावना के साथ रहने का संदेश देता है। इसलिए हमें अपनी पहचान पर गर्व करते हुए भी दूसरे

इंसान के सम्मान को बनाए रखना चाहिए।

इस्लाम भी इंसान को केवल अपनी व्यक्तिगत इबादत तक सीमित नहीं रखता, बल्कि समाज के अधिकारों की भी शिक्षा देता है। क़ुरआन में अल्लाह तआला फ़रमाता है :

"निःसंदेह अल्लाह न्याय, भलाई और रिश्तों को जोड़ने का आदेश देता है।" (क़ुरआन, 16:90)

यह आयत हमें बताती है कि न्याय, भलाई और सामाजिक ज़िम्मेदारी एक अच्छे समाज की बुनियाद हैं।

आज सोशल मीडिया ने समाज को जोड़ने के साथ-साथ कई नई समस्याएँ भी पैदा की हैं। बिना सत्यापन के ख़बरें फैलाना, किसी व्यक्ति की तस्वीर या वीडियो का ग़लत इस्तेमाल करना, अफ़वाह फैलाना और किसी समुदाय के ख़िलाफ़ नफ़रत पैदा करना समाज को नुकसान पहुँचाता है। इसलिए हर व्यक्ति को यह ज़िम्मेदारी समझनी चाहिए कि वह जो कुछ इंटरनेट पर साझा कर रहा है, उसका असर किसी दूसरे व्यक्ति या पूरे समाज पर पड़ सकता है।

हमें यह भी समझना होगा कि बदलाव केवल भाषणों से नहीं आता। अगर हम स्वच्छ समाज चाहते हैं, तो हमें स्वयं स्वच्छता रखनी होगी। अगर ईमानदार समाज चाहते हैं, तो हमें स्वयं ईमानदार होना होगा। अगर महिलाओं का सम्मान चाहते हैं, तो हमें अपने व्यवहार में सम्मान दिखाना होगा। अगर समाज में भाईचारा चाहते हैं, तो हमें नफ़रत फैलाने वाली बातों से दूरी बनानी होगी।

अगर घर में बच्चे को यह शिक्षा मिले कि "तुम्हें केवल आगे बढ़ना है", लेकिन यह न सिखाया जाए कि "आगे बढ़ते हुए किसी को कुचलना नहीं है", तो शिक्षा अधूरी रह जाती है!

हमें दूसरों से यह पूछने से पहले कि "समाज के लिए उन्होंने क्या किया?", ख़ुद से पूछना चाहिए—"मैंने अपने समाज के लिए क्या किया?"

क्योंकि बेहतर समाज की शुरुआत किसी दूसरे व्यक्ति से नहीं, बल्कि हमसे होती है। हमारी छोटी-छोटी अच्छी आदतें आने वाली पीढ़ियों के लिए बड़ा बदलाव बन सकती हैं। अगर हर व्यक्ति अपने हिस्से की ज़िम्मेदारी ईमानदारी से निभाए, तो समाज में विश्वास, इंसानियत, सुरक्षा और भाईचारा मज़बूत हो सकता है।

हमारा समाज हमारा आईना है। हम जैसा व्यवहार समाज के साथ करेंगे, वैसा ही समाज आने वाली पीढ़ियों को मिलेगा। इसलिए समाज को बदलने की शुरुआत दूसरों से नहीं, ख़ुद से करनी होगी। ■■

अध्ययन

AI पर निर्भर रहने से घट रहा आत्मविश्वास

सैन फ़्रांसिस्को, एजेंसी। एआई से तुरंत जवाब मिलना काम को आसान बना सकता है, लेकिन इस पर ज़रूरत से ज़्यादा निर्भर रहने से इंसान का आत्मविश्वास घट रहा है।

अमेरिका स्थित कार्नेगी मेलन विश्वविद्यालय के विशेषज्ञों ने इस संबंध में अध्ययन किया है। पाया गया कि काम के लिए एआई पर दस मिनट से ज़्यादा निर्भर लोग मदद हटाए जाने के बाद परेशानी महसूस करते हैं। विशेषज्ञों ने गणित के सवाल और पढ़कर समझने की क्षमता पर एआई की मदद के असर को जाँचा। अध्ययन में एक हज़ार से भी ज़्यादा लोगों ने हिस्सा लिया।

पहले प्रयोग में 354 लोग शामिल थे। उन्हें फ़्रैक्शन से जुड़े 12 सवाल हल करने थे। प्रतिभागियों को दो समूहों में बाँटा गया था। एक समूह को एआई चैटबॉट की मदद लेने की अनुमति थी, जबकि दूसरे समूह को बिना एआई के सवाल हल करने थे। एआई वाला समूह सीधे जवाब माँग सकता था या संकेत लेकर सवाल हल कर सकता था। इसके बाद बिना किसी सूचना के एआई की मदद हटा दी और सबको नए सवाल दिए। शुरुआत में एआई की मदद वालों ने ज़्यादा सवाल सही हल किए, पर एआई की सुविधा हटी तो प्रदर्शन गिर गया। वे बिना मदद सवाल हल करने में असफल रहे। इससे संकेत मिलता है कि जवाब पाने की आदत लोगों की कोशिश जारी रखने की इच्छा को प्रभावित कर सकती है।

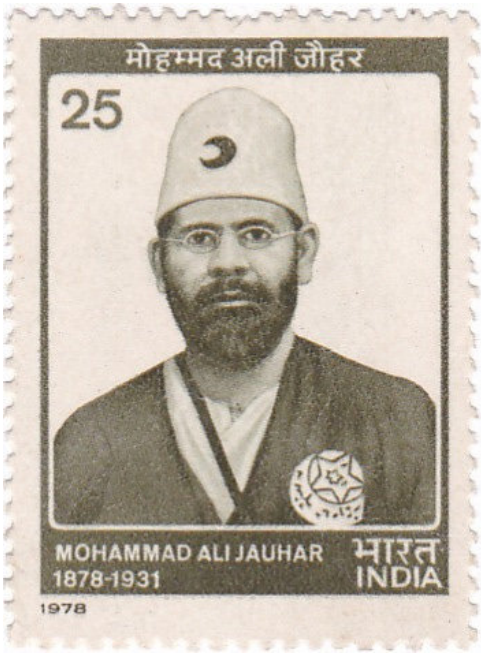
तकनीक सिर्फ़ मदद के लिए, काम के लिए नहीं

विशेषज्ञों के अनुसार, एआई का इस्तेमाल किसी काम को पूरी तरह करने के बजाय उसे समझने और सीखने में मदद लेने के लिए करना चाहिए। इससे सीधे जवाब पाने के आदी लोग मदद हटने पर ज़्यादा परेशानी महसूस करते हैं और जल्दी हार मान लेते हैं, इसलिए एआई से उत्तर माँगने के बजाय संकेत लें। इससे सीखने की क्षमता और आत्मविश्वास बढ़ाने में मदद मिल सकती है।

मुझे आज़ादी दो या क़ब्र के लिए ज़मीन

❖संपादन प्रभाग

जामिया मिल्लिया इस्लामिया, नयी दिल्ली, के पास से गुज़रते हुए एक सड़क का नाम आपको ठहरने पर मजबूर कर देगा—मौलाना मुहम्मद अली जौहर मार्ग। यह सिर्फ़ एक नाम नहीं, उस शख़्स की याद है, जिसने दिल्ली को अपनी क़लम, आवाज़ और अपने जज़्बे से आज़ादी की लड़ाई का महत्त्वपूर्ण मोर्चा बनाया। उत्तर प्रदेश के रामपुर में जन्मे जौहर महान स्वतंत्रता सेनानी थे, बीते दिनों उनके नाम पर स्थापित विश्वविद्यालय काफ़ी ख़बरों में रहा।



पत्रकारिता का केंद्र

जब 1911 में ब्रिटिश हुकूमत ने भारत की राजधानी कलकत्ता से दिल्ली स्थानांतरित करने का ऐलान किया, तो मुहम्मद अली जौहर भी इस बदलाव के साथ दिल्ली आ गए। वह तब तक कलकत्ता से अंग्रेज़ी साप्ताहिक अख़बार 'द कॉमरेड' निकाल रहे थे। महँगे काग़ज़ पर छपने वाला यह अख़बार अपनी बेबाक टिप्पणियों और राष्ट्रीय चेतना के प्रसार के लिए जल्द ही प्रसिद्ध हो गया। 12 अक्टूबर 1912 को 'द कॉमरेड' का पहला दिल्ली संस्करण निकला।

हमदर्द की शुरुआत

आम जनता तक अपनी बात पहुँचाने के लिए उन्होंने वर्ष 1913 में दिल्ली से उर्दू दैनिक अख़बार 'हमदर्द' भी शुरू किया। उनकी लेखनी इतनी प्रभावशाली थी कि ब्रिटिश अधिकारी भी इसे ध्यान से पढ़ते थे। लॉर्ड मिंटो ने एक बार कहा था कि भारत में मुहम्मद अली जौहर की क़लम से ज़्यादा ख़तरनाक कोई क़लम नहीं। उनकी तीखी लेखनी से आज़िज़ आकर अंग्रेज़ी सरकार ने दोनों अख़बारों पर रोक लगा दी। 1924 में उन्होंने फिर से प्रकाशन शुरू किया, लेकिन बाद में वह फिर बंद हो गया।

पहले वीसी

वर्ष 1920 में ख़िलाफ़त और असहयोग आंदोलन के दौरान जौहर ने अलीगढ़ में जामिया मिल्लिया इस्लामिया की नींव रखने में अहम भूमिका निभाई। वह इसके पहले वाइस चांसलर बने। बाद में यह संस्थान दिल्ली के करोल बाग़ में आ गया। जौहर ने कहा था कि ग़ुलाम देश की शिक्षा-व्यवस्था ग़ुलाम ही पैदा करेगी, इसलिए राष्ट्रीय शिक्षा संस्थान ज़रूरी हैं।

गांधी जी से मतभेद

वे मुस्लिम लीग के अध्यक्ष रहे। वर्ष 1923 में कांग्रेस के भी अध्यक्ष बने। हालाँकि, कुछ महीनों बाद ही संगठन में बढ़ते असंतोष के चलते वे पार्टी से अलग हो गए थे। शुरू में वे गांधी जी के क़रीब थे, लेकिन बाद में दोनों के बीच राजनीतिक मतभेद उभरे। वर्ष 1922 के चौरी-चौरा कांड के बाद गांधी जी ने असहयोग आंदोलन स्थगित कर दिया, तो जौहर निराश हो उठे।

अंतिम इच्छा

उन्होंने वर्ष 1930 में लंदन के गोलमेज़ सम्मेलन में बीमार होने के बावजूद भाग लिया। वहाँ उन्होंने कहा, 'मुझे आज़ादी दो या क़ब्र के लिए दो गज़ ज़मीन। मैं ग़ुलाम देश में लौटना नहीं चाहता।' 4 जनवरी 1931 को लंदन में उनका निधन हो गया। उनकी अंतिम इच्छा के अनुसार, उन्हें यरुशलम में दफ़नाया गया। ■■

कहानी

न्याय का स्वरूप

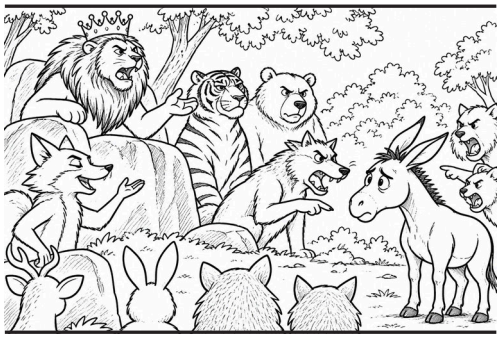
❖आयशा सुल्ताना

एक बार जंगल में भयंकर बीमारी फैल गई। सैकड़ों जानवर मरने लगे। जो जीवित थे, वे भी मौत के डर से काँप रहे थे। जंगल में न रौनक़ थी और न ही पहले जैसी चहल-पहल।

जंगल के राजा शेर ने एक दिन सभी जानवरों की सभा बुलाई। सभा में हाथी, भालू, भेड़िए, लोमड़ियाँ, बाघ और दूसरे तमाम जानवर जमा हुए।

शेर ने गंभीर आवाज़ में कहा, "मित्रो! लगता है कि हमारे पापों के कारण हम पर यह विपत्ति आई है। इससे बचने का एक ही उपाय है। हममें से जो सबसे बड़ा अपराधी है, उसे अपने अपराध का प्रायश्चित करना होगा। इसलिए हर जानवर अपने अपराधों को ईमानदारी से स्वीकार करे। जो सबसे अधिक दोषी होगा, उसी को दंड दिया जाएगा।"

सभा में सन्नाटा छा गया। सबसे पहले शेर स्वयं खड़ा हुआ।



उसने कहा, "मैं स्वीकार करता हूँ कि मैंने अपनी भूख मिटाने के लिए न जाने कितनी भेड़ों को मारकर खाया है। कई बार तो मैंने चरवाहों को भी नहीं छोड़ा। उन बेचारों ने मेरा क्या बिगाड़ा था? फिर भी मैंने उन्हें अपना शिकार बनाया। अगर अपराधों की सज़ा मिलनी चाहिए, तो शायद मुझसे बड़ा अपराधी कोई नहीं।"

शेर की बात सुनकर लोमड़ी तुरंत उठी।

उसने बड़े अदब से सिर झुकाकर कहा, "महाराज! आप भी कैसी बातें करते हैं! भेड़ें तो वैसे भी मामूली और कमज़ोर जीव हैं। उन्हें खाकर आपने कौन-सा अपराध कर दिया? बल्कि यह तो उनका सौभाग्य था कि वे आपके काम आईं। और जहाँ तक चरवाहों का सवाल है, वे तो स्वयं जंगल के जीवों पर अपना अधिकार जमाते हैं। उन्हें जो मिला, उनके कर्मों का फल मिला।"

लोमड़ी की बात सुनकर शेर के दरबारी वाह-वाह करने लगे। इसके बाद बाघ, भालू और भेड़िए ने अपने-अपने कारनामे सुनाए। किसी ने बताया कि उसने कितने हिरनों को मारा, किसी ने कितनी भेड़ों को खाया और किसी ने कितने छोटे जानवरों को अपना शिकार बनाया।

लेकिन किसी ने उनके अपराधों को अपराध नहीं माना। हर कोई उनकी बहादुरी, ताक़त और शिकार करने की कला की तारीफ़ करता रहा।

आख़िर में एक गधे की बारी आई।

गधा सहमा हुआ उठा और बोला, "मुझे एक छोटी-सी बात याद आती है। एक बार मैं एक मठ के पास से गुज़र रहा था। वहाँ हरी-हरी घास उगी हुई थी। मुझे ज़ोरों की भूख लगी थी। मैंने इधर-उधर देखा और थोड़ी-सी घास खा ली। वह घास मेरी नहीं थी। मुझे ऐसा नहीं करना चाहिए था। मैं अपना अपराध स्वीकार करता हूँ।"

गधे की बात पूरी भी नहीं हुई थी कि सभा में हंगामा मच गया। भेड़िया उछलकर खड़ा हुआ और चिल्लाया, "सुन लिया आपने! इसने दूसरे की घास खाई है! इससे बड़ा अपराध क्या हो सकता है? इसी के कारण जंगल पर विपत्ति आई है। इसे कड़ी-से-कड़ी सज़ा मिलनी चाहिए!"

दूसरे जानवर भी चिल्लाने लगे।

"यह घोर अपराध है!"

"इसे छोड़ना न्याय का अपमान होगा!" "इसी को बलि चढ़ाया जाए!"

जो जानवर कुछ देर पहले दूसरों का ख़ून बहाने के अपने कारनामे सुना रहे थे, वे अब गधे को नैतिकता का पाठ पढ़ा रहे थे। सबकी निगाहों में अब केवल गधा अपराधी था।

फ़ैसला सुनाया गया कि जंगल की सारी विपत्तियों की जड़ यही है। इसे मौत की सज़ा दी जाए।

बेचारा गधा कुछ समझ पाता, उससे पहले ही सब उस पर टूट पड़े। उन्होंने उसे मार डाला और फिर मिलकर खा गए।

जंगल में सभा समाप्त हो गई। ताक़तवर जानवर अपने-अपने ठिकानों पर लौट गए। उन्हें लग रहा था कि उन्होंने बहुत बड़ा न्याय किया है। और इस तरह जंगल में न्याय भी हो गया और न्याय करने वालों का पेट भी भर गया!

इस पुरानी दंतकथा का संदेश बहुत गहरा है। कहानी के अंत का आशय है कि न्याय का स्वरूप कई बार व्यक्ति की ताक़त और हैसियत के अनुसार बदल जाता है। ताक़तवर के बड़े अपराध भी उसकी प्रतिष्ठा और प्रभाव के कारण छिपा दिए जाते हैं, जबकि कमज़ोर की छोटी-सी ग़लती को भी उसके विनाश का आधार बना दिया जाता है। ■■

एक अपील, एक ऐलान और तआरुफ़

आपकी ख़ुसूसी तवज्जह का सब से ज़्यादा मुस्तहिक़

40 साल की ख़िदमात

मुस्लिम लड़कियों का यतीमख़ाना गया



कैफ़ियते-क़ियाम : इदारा का तीन यतीम लड़कियों से 21 दिसम्बर 1986 को एक किराया के खपरैल मकान में क़ियाम अमल में आया था, जो कभी साँप, बिच्छू और चिड़ियों का बसेरा था—बक़ौल अल्लामा इक़बाल (रह.) "इश्क़ ने आबाद कर डाले हैं दश्त-ओ-कोहसार"

हिन्दुस्तान की रियासत बिहार, झारखंड, बंगाल, उड़ीसा (ओडीशा) में अपने तर्ज़ की पहली और वाहिद इक़ामती दीनी व असरी उलूम की मशहूर तालीमगाहें (Residential) जो इस्लामी और असरी उलूम का संगम होने की वजह से मशहूर है। • इदारा बुनियाद के दिन से ही सही इस्लामी ख़ुतूत पर यतीम के साथ-साथ ग़रीब और ग़ैर-यतीम तालिबात की तालीमी व तर्बियती ख़िदमात अंजाम दे रहा है। • यहां की तालिबात को मैट्रिक (Matric) पास करने के बाद कॉलेज के अलावा अरबी यूनिवर्सिटी में पहले और दूसरे साल में बाआसानी दाख़िला मिल जाता है। • शोबा-ए-हिफ़्ज़ की तालिबा को भी हिफ़्ज़ के साथ-साथ मैट्रिक (Matric) तक पढ़ाया जाता है। • पांच ज़ुबानों में क़ुरआन और इस्लामियात और बिहार बोर्ड के निसाबे-तालीम के साथ मेयारी तालीम का नज़्म है। • **तालीमी साल** अप्रैल ता मार्च, • इदारा के अहाता (Campus) में ही पर्दे (Purdah) में रहकर नर्सरी (Nursery) से मैट्रिक (Matric) तक की तालीम, होम साइंस, उमोरे-ख़ानादारी, सिलाई-कटाई, मेहंदी व पेंटिंग और कम्प्यूटर की तालीम वग़ैरा दी जाती है। इसके लिए बच्चियों को कहीं आना-जाना नहीं पड़ता। • **तालीमी मराहिल** • इब्तिदाई • सानवी • आला • फ़ासलाती तालीम • शोबा हिफ़्ज़ व नाज़रा **यतीम तालिबात की तादाद** 75 है। **नोट** यतीम तालिबात का सारा ख़र्च, तआम व क़ियाम व रिहाइश वग़ैरा बिल्कुल मुफ़्त (Free) है किसी तरह का कोई ख़र्च नहीं लिया जाता है। **बैरूनी तालिबात की तादाद** अपने ख़र्च पर दारुल अक़ामा (Boarding) में रहकर तालीम हासिल करने वाली और दूसरे गांव से पढ़कर जाने वाली लगभग 100 हैं। **किफ़ाला स्कीम (Sponsorship)** के तहत एक यतीम बच्ची का सालाना ख़र्च तीस हज़ार रुपये (Rs. 30,000) है। आप भी एक यतीम बच्ची की किफ़ालत की ज़िम्मेदारी लेकर सवाब में शरीक हों। **असातिज़ा, मुअल्लिमात और दीगर मुलाज़िमीन की तादाद** 33 है। एक माह की तनख़्वाह एक लाख अस्सी हज़ार रुपये (Rs. 1,80,000) से ज़्यादा है। **सालाना ख़र्च** तक़रीबन पैंतालिस लाख रुपये (Rs. 45,00,000)। **ज़रिया आमदनी** मुस्लिम अवाम के चंदे **अपील** आज के माद्दापरस्ताना (Materialistic) और जदीद दौर में लड़कियों के लिए जदीद और मुकम्मल इस्लामी तर्ज़े-तालीम के साथ रिहाइशी (Residential) इदारों की पहले से कहीं ज़्यादा बढ़कर ज़रूरत है। • आप इस आसमान छूती महंगाई को देखते हुए और माहे रमज़ानुल मुबारक वग़ैरह के मुबारक मौक़ा पर इदारे की नन्ही-मुन्नी मासूम यतीम बच्चियों को ऊंचा उठाने के लिए अपने • ज़कात • अतियात • सदक़ात से भरपूर माली मदद करें ताकि वे तालीम और हुनर के मैदान में आगे बढ़ सकें और किसी से पीछे न रहें। • बाक़ी तामीरी व तालीमी मन्सूबों को पूरा करने के लिए रक़म की फ़ौरी ज़रूरत है। • इदारा आपके फ़राख़दिलाना और मुख़लिसाना भरपूर माली तआवुन का मुंतज़िर है। **याद रखें** यह लड़कियों का इदारा है। यहां चंदा वसूल करने वालों की बहुत कमी है। यहां का कोई भी मुहस्सिल कमीशन (उजरत) पर चंदा वसूल नहीं किया करता है।

नोट : इदारा की मुख़्तसर तारीख़ दस्तावेज़ी फ़िल्म (Documentary Film) नज़रे-इनायत (Nazr-e-Enayeth) यू-ट्यूब (You Tube) पर देखें।

चैक व ड्राफ़्ट और कोर बैंकिंग स्लिप पर सिर्फ़ यह लिखें : THE GAYA MUSLIM GIRLS' ORPHANAGAE

बराए राबिता चैक व ड्राफ़्ट और मनीऑर्डर भेजने का पता

Founder & Hon. G. Secretary, THE GAYA MUSLIM GIRLS' ORPHANAGE,
At. : Kolowna, P.o : Cherki-824237, Distt. : Gaya (Bihar) India

Email : thegayamuslimgirlsorphanage@gmail.com, Mobile : 8969435151, Website : www.gmgo.in

Beneficiary Name
THE GAYA MUSLIM GIRLS' ORPHANAGE
Bank A/C No.: 300402010007752 (ज़कात/Zakath)
Bank A/C No.: 300402010009846 (डोनेशन/Donation)
Bank IFSC Code No: UBIN0530042
Bank: UNION BANK OF INDIA
(MAIN BRANCH GAYA)

Scan & Pay

याद रखें : बैंक में रक़म ट्रांसफ़र की तफ़्सील बराए-मेहरबानी स्कैन एंड पै (Scan & Pay) या किसी ज़रिये से रक़म ट्रांसफ़र के बाद स्क्रीन शॉट (Screen Shot) नाम व पता सहित व्हाट्स एप कर दें ताकि रसीद भेजी जा सके।

व्हाट्स एप नम्बर 7367909126 बानी व इजाज़ी जनरल सेक्रेट्री इक़बाल अहमद ख़ां—9934480190

पटना ब्रांच ऑफ़िस : पटना शहर के हमदर्द अपना चैक व ड्राफ़्ट और रक़म देने के लिए इनसे राबिता करें।

जनाब ग़ुलाम मुहम्मद ख़ां (सदर) समनपूरा, पटना, **मोबाइल : 9934943229**

जनाब इंजीनियर मुहम्मद हसनैन ख़ां, समनपूरा, पटना, **मोबाइल : 9631867066**

अंतिम पैग़म्बर हज़रत मुहम्मद (सल्ल.)

भाईचारे की स्थापना



(गतांक से आगे)

❖मुशर्रफ़ अली

मस्जिदे-नबवी

मदीना आने के बाद सबसे पहली ज़रूरत एक मस्जिद के निर्माण की थी अतः अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने एक उचित स्थान देखकर उसका सौदा किया। वह ज़मीन दो नाबालिग़ लड़कों की थी, जिनके पिता की मौत हो चुकी थी। मस्जिद के लिए उन लड़कों ने और उनके अभिभावकों ने वह ज़मीन उपहारस्वरूप देने की बहुत कोशिश की लेकिन नबी इसके लिए तैयार नहीं हुए। अंत में क़ीमत देकर ही ज़मीन ख़रीदी गयी। मुसलमानों ने मिलकर उसकी क़ीमत अदा की।

जल्दी ही उस ज़मीन पर निर्माण का काम शुरू हो गया। इसके लिए किसी मज़दूर या राज मिस्त्री को रखने की ज़रूरत नहीं पड़ी। सारे मुसलमान स्वेच्छा से मस्जिद निर्माण में अपना योगदान देने को तैयार हो गये। ख़ुद अल्लाह के रसूल मुहम्मद (सल्ल०) और मक्का से आये उनके साथी भी ईंट पत्थर ढोने में जुट गये। आरंभ में लगभग 150 फ़ुट लम्बी और उससे कुछ कम चौड़ी जगह को कच्ची ईंटों की दीवार से घेर कर बीच में खजूर के तनों के खम्भे लगा दिये गये और ऊपर खजूर के पत्तों और डालियों का छप्पड़ डाल दिया गया।

मुहम्मद (सल्ल०) ने मस्जिद के साथ ही अपने रहने के लिए दो छोटे-छोटे और कम ऊंचाई वाले कमरे भी बनाये। फिर वे अबू-अय्यूब अंसारी का घर छोड़कर यहीं आ गये।

इस्लाम की यह पहली इमारत किसी भी अर्थ में भव्य नहीं थी। यह एक खुली और बड़ी इमारत थी जहां सारे मुसलमान एक साथ इबादत कर सकें। इसके कण-कण से सादगी टपकती थी, जो इस्लाम का स्वभाव है। हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) ज़रूरत पड़ने पर लकड़ी के एक टुकड़े पर खड़े होकर लोगों को सम्बोधित करते और वहीं खजूर की चटाई पर नमाज़ अदा करते। वे

इस्लाम की यह पहली इमारत किसी भी अर्थ में भव्य नहीं थी। यह एक खुली और बड़ी इमारत थी जहां सारे मुसलमान एक साथ इबादत कर सकें। इसके कण-कण से सादगी टपकती थी, जो इस्लाम का स्वभाव है। हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) ज़रूरत पड़ने पर लकड़ी के एक टुकड़े पर खड़े होकर लोगों को सम्बोधित करते और वहीं खजूर की चटाई पर नमाज़ अदा करते। वे मस्जिद से लगी झोंपड़ी में अपनी पत्नियों के साथ रहते, जो इसका प्रदर्शन है कि जीवन का एक विभाग दूसरे से अलग नहीं है।

मस्जिद से लगी झोंपड़ी में अपनी पत्नियों के साथ रहते, जो इसका प्रदर्शन है कि जीवन का एक विभाग दूसरे से अलग नहीं है। अर्थात् जीवन को विभागों में विभाजित कर अलग-अलग जीवन जीना इस्लाम की दृष्टि में स्वीकार्य नहीं है, सब कुछ स्पष्ट और पारदर्शी होना चाहिए।

यह मस्जिद केवल नमाज़ अदा करने के लिए ही नहीं थी, बल्कि हर तरह की इस्लामी गतिविधियों का केन्द्र थी। इसी में मुसलमानों की शिक्षा-प्रशिक्षण की व्यवस्था थी। विभिन्न क़बीलों और क्षेत्रों के लोगों को एक साथ मेल-जोल से रहने के लिए नैतिकता की शिक्षा भी यहीं से मिलती थी। जो छोटा-सा इस्लामी राज्य स्थापित हुआ था उसका प्रशासन भी यहीं से चलाया जाता था।

मस्जिद के एक सिरे पर एक चबूतरा था जो सुफ़्फ़ा कहलाता था, यह उन लोगों के लिए था जिनके घर-परिवार नहीं थे। ऐसे लोग रात भी यहीं गुज़ारते थे।

आरंभिक दिनों में ही अज़ान की शुरुआत भी हो गयी थी और मक्का से आये बिलाल को अल्लाह के नबी (सल्ल०) ने इस मस्जिद अर्थात् मस्जिदे-नबवी का मुअज़्ज़िन (अज़ान देने वाला) नियुक्त कर दिया।

यह मस्जिद केवल नमाज़ अदा करने के लिए ही नहीं थी, बल्कि हर तरह की इस्लामी गतिविधियों का केन्द्र थी। इसी में मुसलमानों की शिक्षा-प्रशिक्षण की व्यवस्था थी। विभिन्न क़बीलों और क्षेत्रों के लोगों को एक साथ मेल-जोल से रहने के लिए नैतिकता की शिक्षा भी यहीं से मिलती थी। जो छोटा-सा इस्लामी राज्य स्थापित हुआ था उसका प्रशासन भी यहीं से चलाया जाता था।

भाईचारा

मुहाजिर (मक्का से हिजरत करके आने वाले) ख़ाली हाथ मदीना पहुंचे थे। हालांकि उनमें बहुत से दौलतमन्द लोग भी थे, लेकिन जिन हालात में वे आये थे, उनमें कोई सामान लाने का कोई मौक़ा नहीं था। वे तो किसी तरह चारों ओर फैले हुए दुश्मनों से छिप-छिपाकर अपनी जान और अपना ईमान बचाकर भाग आये थे।

ये मुहाजिर वैसे तो मदीना वालों के मेहमान थे, लेकिन उनके लिए कोई स्थायी व्यवस्था करना ज़रूरी था। अधिक दिनों तक किसी पर आश्रित रहना नैतिकता के भी विरुद्ध था और मुहाजिरों के आत्म-सम्मान के भी ख़िलाफ़ था। दूसरी बात यह थी कि मदीना वाले किसान थे, मक्का वालों की तरह व्यापारी नहीं, इसलिए इनमें ऐसे बड़े धनवान लोग नहीं थे, जो लम्बे समय तक किसी का बोझ उठा सकें।

उधर मस्जिद का निर्माण चल रहा था, इधर अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने सारे मुहाजिरों और अंसारियों (मदीना के स्थानीय मुसलमानों) को एक जगह जमा किया। अरबी भाषा में 'अंसार' मदद करने वाले को कहते हैं, चूंकि मदीना के मुसलमानों ने अल्लाह के रसूल (सल्ल०) की बड़ी मदद की थी, इसलिए नबी ने उन्हें यह नाम दिया। नबी ने अंसारियों को सम्बोधित करके कहा कि ये मुहाजिर तुम्हारे भाई हैं। फिर उन्होंने एक अंसारी को बुलाया और एक मुहाजिर उसके हवाले करते हुए कहा कि तुम दोनों आपस में भाई हो। इसी तरह उन्होंने सारे मुहाजिरों का हाथ एक-एक अंसारी के हाथ में थमा दिया। केवल अपने परिवार को इससे अलग रखा, क्योंकि उनके लिए एक अंसारी को भाई बनाकर दूसरों पर उसे वरीयता देना न्याय के विरुद्ध होता। इसलिए नबी ने अली का हाथ पकड़ा और कहा कि यह मेरा भाई है। इसी तरह अपने चचा हमज़ा को अपने सेवक ज़ैद का भाई बना दिया।

भाईचारे के इस रिश्ते को अंसारियों ने बहुत महत्व दिया और बिल्कुल अपने सगे भाई की तरह उन्हें अपनी पूरी जायदाद में शरीक कर लिया। वे अपने मुहाजिर भाई को लेकर अपने घर गये, घर की एक-एक चीज़ दिखाई फिर खेत और बाग़ दिखाये और कहा कि आज से इसमें से आधा तुम्हारा है। कुछ अंसारियों ने अपने घर के पास की ज़मीन पर अपने मुहाजिर भाई के लिए घर भी बनवा दिये। जिनके घर में गुंजाइश थी उन्होंने उन्हें घर के एक हिस्से में ही जगह दे दी।

मुहाजिरों ने उन्हें धन्यवाद कहा, उनका शुक्र अदा किया, अल्लाह से उनके लिए दुआ की, लेकिन उनकी ज़मीन जायदाद में से कुछ लेना स्वीकार नहीं किया। उन्होंने कहा कि हम व्यापारी लोग हैं, हमें तो आप बाज़ार दिखा दें। जब रहने का ठिकाना मिल गया तो मुहाजिरों ने छोटी पूंजी से ही अपना व्यापार शुरू कर दिया। अल्लाह ने इतनी बरकत दी कि देखते-देखते उनमें से कई बहुत बड़े व्यापारी बन गये।

अंसार और मुहाजिरों के बीच भाईचारा स्थापित करने का एक उद्देश्य यह भी था कि इस तरह अंधकार युग के सारे भेदभाव मिट जाएं। रंग, वंश, क्षेत्रीयता, ऊंच, नीच आदि की जगह इस्लाम का एक रंग सब पर चढ़ जाए और लोगों के मन में यह बात अच्छी तरह बैठ जाए कि मानवता का आदर्श ईशपरायणता के सिवा कुछ नहीं है। ■■

दुनिया का पहला मानवाधिकार चार्टर

अंतिम हज का संबोधन

अपने अंतिम हज के अवसर पर पैग़म्बर हज़रत मुहम्मद (सल्ल.) ने अपने सवा लाख अनुयायियों के समक्ष जो महत्वपूर्ण भाषण दिया था, वह हदीस की पुस्तकों में पूर्ण रूप से सुरक्षित है। यह आदेश-निर्देश मानवाधिकारों का ऐसा चार्टर है जिसका उदाहरण पहले तो क्या आज भी प्रस्तुत नहीं किया जा सकता। इसकी विशेषता यह है कि यह समाज में पूरे तौर पर लागू हुआ। इस महत्वपूर्ण भाषण का सार प्रस्तुत है।

पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल.) ने कहा- "लोगो! मेरी बात ध्यान से सुनो, हो सकता है इस वर्ष के बाद इस स्थान पर मैं तुम से कभी न मिल पाऊं। अज्ञानकाल की समस्त रीतियां मेरे पैर के नीचे हैं (अर्थात् निरस्त कर दी गयी हैं), लोगो! तुम सबका प्रभु एक है और बाप भी एक है। किसी अरब वाले को किसी ग़ैर-अरब पर बड़ाई नहीं, न किसी गोरे को काले पर, बड़ाई केवल परहेज़गारी के आधार पर है।

हर मुसलमान दूसरे का भाई है, लोगो! तुम्हारी जान और माल एक-दूसरे पर हराम हैं। जिस प्रकार यह (हज का) दिन है, यह महीना है और यह नगर (मक्का) है। (अर्थात् जान-माल को हानि पहुंचाना निषिद्ध है)

अपराधी अपने अपराध के लिए स्वयं ज़िम्मेदार है, उसके पिता या पुत्र से बदला नहीं लिया जाएगा।

तुम्हारे ग़ुलाम-तुम जो स्वयं खाओ वही उनको खिलाओ, जो स्वयं पहनो वही उनको पहनाओ।

अज्ञानकाल के हत्या के समस्त प्रकरण (जिसमें बदला लेने का चक्र चलता था) निरस्त किये जाते हैं। ब्याज के सभी अनुबंध समाप्त किये जाते हैं, हां अपना मूलधन प्राप्त करने के तुम अधिकारी हो। सबसे पहले में अपने ही परिवार के अब्बास-बिन-अब्दुल मुत्तलिब का सूद ख़त्म करता हूं।

ऐ लोगो! तुम अपनी पत्नियों पर अधिकार रखते हो और वे भी तुम पर अधिकार रखती हैं। तुम्हारी ओर से उनकी ज़िम्मेदारी है कि वे तुम्हारे बेडरूम (शयनकक्ष) में किसी ग़ैर को न आने दें, क्योंकि यह तुम्हें सहन नहीं है और उन पर स्वयं भी अनिवार्य है कि वे अश्लीलता का कोई कार्य न करें। मैं औरतों के बारे में तुम्हें वसीयत करता हूं कि उनके साथ अच्छा व्यवहार करो।

ऐ लोगो! मेरे बाद कोई संदेष्टा नहीं और न ही तुम्हारे बाद कोई नई उम्मत (समुदाय) पैदा होगी, इसलिए अपने प्रभु पालनहार की उपासना करो, पांचों समय की नमाज़ पढ़ो, रमज़ान मास के रोज़े रखो, अपने माल में से शुद्ध मन से ज़कात दो, अपने प्रभु के घर का दर्शन (हज) करो और अपने अमीर (इस्लामी शासक) का आज्ञापालन करो ताकि तुम्हें स्वर्ग प्राप्त हो। यदि कोई नक्टा हब्शी अमीर हो और वह ईश्वर के ग्रंथ (क़ुरआन) के अनुसार चले तो उसकी बात सुनो और आज्ञापालन करो।

मैं तुम्हारे बीच ऐसी चीज़ छोड़ रहा हूं कि यदि तुम उसे मज़बूती से पकड़े रहोगे तो कभी गुमराह नहीं हो सकते—वह है अल्लाह की किताब (क़ुरआन) और मेरी सुन्नत (हज़रत मुहम्मद सल्ल. का व्यवहार जो हदीस के रूप में सुरक्षित है)।"

अंत में निर्देश दिया कि उपस्थित लोग इन उपदेशों को उन लोगों तक पहुंचा दें जो यहां उपस्थित नहीं हैं। ■■

KANTI Monthly, New Delhi
December 2026
Posted on 20-21 November 2026
Published on 18 November 2026
Posted Delhi RMS Delhi-110006

RNI 53372/91
DL(S)-05/3147/2024-2026
LICENSED TO POST WITHOUT PREPAYMENT
License No. U(SE)-73/2024-26
Total Pages with Cover: 52

“सच्चा मुसलमान (शांतिप्रिय व्यक्ति) वह है जिसकी ज़ुबान और हाथ (के नुक़्सान) से दूसरे इंसान सुरक्षित रहें।”

(हदीस : बुख़ारी)

A Well Wisher

Jamaat Islami Hind
Ramganj Bazar
Jaipur
(Raj.)